मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 129 ● वर्ष 14, अंक 5 ● जुलाई 2024 ● दस रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

गिग मज़दूरों के श्रम अधिकारों को छीनने के लिए कर्नाटक सरकार लायी ख़तरनाक क़ानून! 5

एक धनपशु के बेटे की शादी का अश्लील तमाशा और देश के विकास की बुलन्द तस्वीर! 6

अमीरजादों की चमचमाती गाड़ियों के चक्कों से पिसकर ख़ून से लथपथ होती आम ज़िन्दगी 8

मोदी सरकार की फ़ासीवादी श्रम संहिताओं के विरुद्ध तत्काल लम्बे संघर्ष की तैयारी करनी होगी

सम्पादकीय अग्रलेख

मोदी-नीत भाजपा के नेतृत्व में गठबन्धन सरकार बनने के बाद आने वाले 'मज़दूर बिगुल' के पहले अंक यानी पिछले अंक के सम्पादकीय में हमने कहा था कि भाजपा को पूर्ण बहुमत न मिलने और नायडू-नीतीश की बैसाखी पर गठबन्धन सरकार बनने से निश्चय ही संघ परिवार के फ़ासीवादी एजेण्डा के कुछ प्रतीकात्मक व कोर साम्प्रदायिक तत्वों को लागू करने में, मसलन, समान नागरिक संहिता और नागरिकता संशोधन क़ानून को लागू करने में कुछ दिक्कतें पेश आ सकती हैं। मोदी सरकार द्वारा इन मुद्दों पर समझौते से मोदी की फ़ासीवादी फ्यूहरर छवि को भी कुछ नुकसान पहुँच सकता है। लेकिन हमने कहा था कि उसकी मज़दूर-विरोधी नवउदारवादी नीतियों को कोई फ़र्क पड़ेगा इसकी गुंजाइश नहीं के बराबर है। वजह यह कि इन नवउदारवादी नीतियों को भारत के पूँजीपति वर्ग की सभी चुनावी पार्टियों की ओर से कही-अनकही सहमति है। हमने लिखा था: *"विशेष तौर पर, सरकार की मज़दूरों-मेहनतकशों के शोषण की दर को बढ़ाने व उनके दमन-उत्पीड़न को बढ़ाने के लिए बनाये जाने वाली नीतियों में कोई गुणात्मक अन्तर नहीं आयेगा। अभी से ही मज़दूर-विरोधी लेबर कोड्स को लागू करने की बातें ज़ोर पकड़ने लगी हैं।"* (सम्पादकीय, *मज़दूर बिगुल*, जून, 2024)

हमारा यह पूर्वानुमान पूरी तरह से सही साबित हुआ है। यह सम्पादकीय लेख लिखे जाने के 3 दिन पहले ही यह ख़बर आयी कि नये केन्द्रीय श्रम मन्त्री मनसुख मण्डाविया ने *सेवा* नामक यूनियन और संघ परिवार की जेबी यूनियन भारतीय मज़दूर संघ के प्रतिनिधियों से मुलाकात कर श्रम संहिताओं को लागू करने के मसले पर समर्थन माँगा है। इसी बाबत, मण्डाविया ने 25-26 जुलाई को केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की बैठक बुलायी है। संशोधनवादी पार्टियों की ट्रेड यूनियनें, मसलन, सीटू, एटक, ऐक्टू, आदि और अन्य सुधारवादी व पूँजीवादी पार्टियों की दलाली करने वाली केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें इस सवाल पर विरोध का ज़ुबानी जमाख़र्च तो कर रही हैं, लेकिन इस पर ऐसा कोई वास्तविक कदम नहीं उठा रही हैं, जिससे मोदी सरकार पर इन मज़दूर-विरोधी श्रम संहिताओं को रद्द करने का दबाव बनाया जा सके।

ज़रा सोचिये – *जिन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की सदस्यता का बड़ा हिस्सा उन सेक्टरों में है जो सरकार और व्यवस्था के लिए कुंजीभूत और रणनीतिक महत्व रखते हैं, मसलन, रेलवे, पोस्ट व टेलीग्राफ़, बैंक, बीमा, खनन-उत्खनन, भारी इंजीनियरिंग उद्योग, रासायनिक उद्योग, इस्पात उद्योग व संगठित ऑटोमोबाइल उद्योग, टेक्सटाइल उद्योग, आदि,* ***वे इस मसले पर आम हड़ताल का आह्वान क्यों नहीं कर रही हैं?*** *यदि ये सेक्टर कुछ दिन भी ठप्प पड़ गये, तो सरकार के लिए भारी मुश्किल खड़ी हो जायेगी।* लेकिन यह वास्तविक ठोस कदम उठाने के बजाय और मज़दूर वर्ग के संघर्ष के सबसे अहम हथियारों में से एक, यानी आम हड़ताल, को उठाने के बजाय, ये केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें बस खोखली गर्म जुमलेबाज़ी कर रही हैं। वे मौखिक आपत्तियाँ उठा रही हैं लेकिन कोई ठोस कदम नहीं उठा रहीं। वैसे तो इन यूनियनों की पहुँच 93 प्रतिशत अनौपचारिक व असंगठित मज़दूरों के बीच बेहद मामूली है, लेकिन अगर उपरोक्त ढाँचागत सेक्टरों की संगठित व औपचारिक मज़दूर आबादी भी अनिश्चितकालीन हड़ताल पर चली गयी तो शासक वर्ग और उसकी राज्यसत्ता के लिए एक ऐसी स्थिति पैदा हो जायेगी, जिसे सँभालना उसके

(पेज 9 पर जारी)

रेल व्यवस्था का ग़रीब विरोधी चरित्र! लगातार बढ़ते ट्रेन हादसे! ज़िम्मेदार मोदी सरकार!!

● भारत

अब ट्रेन में सफ़र करना भी चुनौतीपूर्ण काम हो चुका है। अब यह हिन्दुस्तानी ज़ुबान के 'सफ़र' से अधिक अंग्रेज़ी ज़ुबान के 'सफ़र' में तब्दील हो चुका है, जिसका मतलब होता है तकलीफ़ झेलना। अगर आपकी जेब में पैसा है तो आप एसी का टिकट लीजिए और अगर इतना पैसा नहीं है तो जनरल या स्लीपर डिब्बे में धक्के खाते हुए जाइए। अगर ट्रेन में किसी तरह चढ़ भी गये, तो कोई गारण्टी नहीं है कि सुरक्षित अपने गन्तव्य तक पहुँच पायेंगे। ट्रेनों में लगातार बढ़ती भीड़, भेड़-बकरियों की तरह यात्रा करते लोग, रेल दुर्घटनाओं में बढ़ोतरी, यह भारतीय रेलवे का ग़रीब विरोधी चरित्र दर्शाता है।

हालिया रेल दुर्घटना बंगाल में हुई। जलपाईगुड़ी में दो ट्रेनों के बीच 17 जून को हुए दर्दनाक हादसे में 12 लोगों की मौत हो गयी और 25 लोग घायल हुए हैं। मोदी सरकार ने मृतकों के परिवारों को 2 लाख रुपये और घायलों को 50 हज़ार रुपये देकर अपना पल्ला झाड़ लिया है। रेल मन्त्री हमेशा की तरह या तो घड़ियाली आँसू बहा देते हैं या ऐसे दिखाते है कि सब ठीक हो जायेगा। लेकिन सवाल यह है कि इस हादसे के लिए कौन ज़िम्मेदार है? किसी भी जाँच द्वारा यह बात सामने आयेगी ही कि किसी स्तर पर मानवीय चूक हुई है। बात वहीं समाप्त हो जायेगी। लेकिन इन मानवीय चूकों की बढ़ती बारम्बारता के पीछे कई ढाँचागत कारण ज़िम्मेदार हैं। इसलिए सवाल उन ढाँचागत कारकों का है।

मोदी सरकार के पिछले 10 वर्षों में रेलवे की हालत बद से बदतर हुई है, सिर्फ़ यात्रियों की नहीं बल्कि कर्मचारियों की। कर्मचारियों की स्थिति की पहले बात करें तो, रेलवे में नौकरियों को घटाया जा रहा है, जो नौकरियाँ हैं उनका ठेकाकरण और कैज़ुअलीकरण कर दिया गया है। भारतीय रेलवे में 78 हज़ार लोको एवं असिस्टेण्ट लोको पायलट हैं। रेलवे में लोको पायलट और सहायक लोको पायलट के कुल 1,27,644 पद हैं, जिनमें से 18,766 पद (14.7 फीसदी) एक मार्च 2024 तक रिक्त थे। लोको पायलट के 70,093 पद स्वीकृत हैं, जिनमें से 14,429 (लगभग 20.5 फीसदी) खाली पड़े हैं, जबकि सहायक लोको पायलट के 57,551 पद स्वीकृत हैं, जिनमें से 4,337 (लगभग 7.5 फीसदी) खाली हैं। नतीजतन, ड्राइवरों पर काम का भयंकर बोझ है। कई जगहों पर ड्राइवरों को गाड़ियाँ रोककर झपकियाँ लेनी पड़ रही हैं क्योंकि 18-20 घण्टे लगातार गाड़ी चलाने के बाद बिना सोये दुर्घटना की सँभावना बढ़ जाती

(पेज 10 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

काँवड़ यात्रियों के नाम पर योगी सरकार का एक और फ़ासिस्ट आदेश

● राजू

शायद आप जानते हों कि हिटलर के शासन में जर्मनी में यहूदियों के घरों पर निशान लगा दिये जाते थे ताकि उन्हें फ़ौरन पहचान लिया जाये। अब ऐसा ही एक फ़ासिस्ट आदेश उत्तर प्रदेश पुलिस ने दिया है कि कांवड़ यात्रा के मार्ग में सभी होटल-ढाबों का नाम और साथ ही मालिक का नाम भी लिखना होगा। इसका सीधा मतलब है कि मुसलमानों को अपने नाम साफ़ लिखने होंगे ताकि उन्हें आसानी से पहचाना जा सके।

मुज़फ़्फ़रनगर के पुलिस अधीक्षक ने आदेश जारी करते हुए कहा कि ऐसा इसलिए किया जा रहा है ताकि किसी को गलतफ़हमी न हो। कहने को तो देश का संविधान धर्म और जाति के नाम पर किसी भी तरह के भेदभाव पर रोक लगाता है, लेकिन भाजपा के शासन में संविधान और सेकुलरिज़्म की बातों की असलियत यही है।

कांवड़ मार्ग पर पड़ने वाली मांस व अण्डे की सभी दुकानें भी बन्द रहेंगी। पिछले साल मुज़फ़्फ़रनगर ज़िले में कांवड़ यात्रा के मार्ग पर पड़ने वाले सभी मुसलमान मालिकों के होटल बन्द करा दिये गये थे। इनमें वे शाकाहारी होटल भी शामिल थे जहाँ खाने में प्याज-लहसुन भी नहीं डाला जाता था।

इस बेहूदा आदेश के पीछे मुस्लिम दुकानदारों के ख़िलाफ़ अभियान चला रहे स्वामी यशवीर नाम के एक ढोंगी बाबा का हाथ है। इस घोर साम्प्रदायिक व्यक्ति ने आरोप लगया है कि "ये लोग खाने में थूक रहे हैं और मूत्र भी कर रहे हैं।" ऐसे अपराधी की जगह सीधे जेल में होनी चाहिए थी लेकिन फ़ासिस्ट भाजपा उसे सर-आँखों पर बैठाकर उसके वाहियात आरोपों की बिना पर लोगों का कारोबार बन्द करा रही है और कांवड़ के नाम पर रास्ते पर भर गुण्डागर्दी और आवारागर्दी करने वालों के लिए आसान बना रही है कि वे मुस्लिम नामों की पहचान करके उन दुकानों को निशाना बनायें।

हाईवे पर चलने वाले चंडीगढ़ दा ढाबा के मैनेजर अफ़सर अली ने ढाबा बन्द करने की वजह बताते हुए कहा, "स्वामी यशवीर ने हम पर कई तरह के आरोप लगा दिए। कहा कि हम खाने में थूक देते होंगे या पेशाब कर देते होंगे। हालाँकि काउंटर पर बैठा इंसान भले ही मुस्लिम था लेकिन हमारा पूरा स्टाफ़ हिन्दू ही था."

जिन लोगों को लग रहा था कि लोकसभा चुनाव में सीटें कम होने के बाद भाजपा और आरएसएस "सुधर" जायेंगे या ठण्डे पड़ जायेंगे, उन्हें अब अपने भ्रम दूर कर लेने चाहिए। पिछले एक महीने में ही देश में मॉब लिंचिंग की कई घटनाएँ हो चुकी हैं। अभी पूरे देश ने देखा कि किस तरह महाराष्ट्र में भाजपाई गुण्डों की एक भीड़ सरेआम एक मस्जिद पर चढ़कर उसे तोड़ने की कोशिश करती रही और पुलिस खड़ी तमाशा देखती रही।

अब भी वक़्त है, इस ख़ुशफ़हमी से निकलिए कि मुहब्बत की दुकानों से संघी गुण्डे शराफ़त का इत्र ख़रीदकर सुधर जायेंगे। हमें इनका मुकाबला सड़कों पर करने के लिए तैयार होने होगा। आने वाले दिनों में यह सच्चाई और भी साफ़ होती जायेगी।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।
मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है।
आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितयों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 8853476339

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016 फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

मोदी सरकार की तीसरी पारी की शुरुआत के साथ ही साम्प्रदायिक भीड़ द्वारा हत्या (मॉब–लिंचिंग) की घटनाओं में हुई बढ़ोतरी

● अजित

'मज़दूर बिगुल' के पिछले अंक के सम्पादकीय में यह पूर्वानुमान लगाया गया था कि मोदी-नीत भाजपा द्वारा अपने बूते पूर्ण बहुमत से सरकार न बना पाने और नीतीश-नायडू की बैसाखी के बूते गठबन्धन सरकार बनने से दो चीज़ों में कोई बदलाव नहीं आयेगा: मोदी सरकार की मज़दूर-विरोधी व जन-विरोधी आर्थिक नीतियाँ और संघी फ़ासीवादियों के गिरोहों द्वारा सड़क पर हिंसा। ये दोनों ही पूर्वानुमान शत-प्रतिशत सही साबित हुए हैं।

मोदी-नीत गठबन्धन सरकार के तीसरी बार सत्ता में पहुँचने के साथ ही फ़ासीवादियों की बौखलाहट सड़क पर फ़ासीवादी हिंसा की बढ़ती वारदातों के रूप में सामने आयी है। 4 जून को चुनाव परिणाम घोषित होने के सिर्फ़ एक महीने के भीतर ही फ़ासीवादी भीड़ों द्वारा मॉब-लिंचिंग की कई घटनाओं को खुलेआम अंज़ाम दिया गया। मध्य प्रदेश, राजस्थान से लेकर उड़ीसा व उत्तर प्रदेश तक में ऐसी घटनाओं की बाढ़-सी आ गई है। 7 जून को छत्तीसगढ़ के रायपुर में एक मुस्लिम युवक की पीट- पीटकर हत्या कर दी गई। यूपी के मुरादाबाद और अलीगढ़ में भी मुस्लिम युवकों को फ़ासीवादी भीड़ द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया। राजस्थान में गौ तस्करी के नाम पर दो हिन्दू युवकों की हत्या कर दी गई। उड़ीसा से भी मॉब-लिंचिंग की कई घटनाएँ सामने आई है।

इन सारी ही घटनाओं में आरोपी भाजपा या संघ परिवार के किसी अनुषंगिक संगठन से जुड़े हुए थे। इनमें से ज़्यादातर लोग स्वयं को "गौ रक्षक" बताते हैं एवं गोकशी करने वालों को मौत के घाट उतार कर उन्हें सजा देने को "पवित्र काम" मानते हैं। हालाँकि उपरोक्त घटनाओं में से ज़्यादातर घटनाओं में गोकशी की बात पूरी तरह से झूठी पाई गई है। पिछले महीने ही गुजरात में एक क्रिकेट मैच में हुए विवाद के दौरान एक मुस्लिम क्रिकेटर के ऊपर भीड़ ने हमला कर दिया और उसके साथ जय श्री राम के नारे लगाने की ज़बरदस्ती की। मॉब-लिंचिंग की घटनाएँ गठबन्धन सरकार के साथ मोदी के सत्ता में आने के साथ भी अप्रत्याशित रूप से बढ़ी है। भाजपा की सरकार कभी भी इन घटनाओं पर कोई कदम नहीं उठाती, उल्टे कई मामलों में आरोपियों को बचाने तक की कोशिश करती है।

भाजपा एवं संघ परिवार के गोरक्षा एवं गो-प्रेम की असलियत यह है कि देश की सबसे बड़ी बीफ़ कम्पनी का मालिक भाजपा का नेता बना बैठा है। बड़ी-बड़ी बीफ़ कम्पनियों से भाजपा करोड़ों रुपए का चन्दा लेती है। इसके साथ ही उत्तर भारत में गोरक्षा के नाम पर राजनीति करने वाली भाजपा

केरल, गोवा व उत्तर पूर्व के राज्यों में चुनाव के दौरान बढ़िया क्वालिटी के बीफ़ की सप्लाई का वादा करती है। इन सारी घटनाओं पर स्वघोषित गोरक्षकों को कोई दिक्क़त नहीं है। इन घटनाओं से भाजपा व संघ परिवार के असली चेहरे और दोहरे चरित्र का पता चलता है। असल में, गोरक्षा के नाम पर व्यापक मेहनतकश मुसलमान आबादी को निशाना बनाना और देश में साम्प्रदायिक माहौल पैदा करना असली मकसद है।

मॉब-लिंचिंग की घटनाओं में आमतौर पर गरीब व निम्न मध्यवर्गीय मुसलमान को निशाना बनाया जाता है और एक बड़ी मुसलमान आबादी के बीच डर का माहौल पैदा किया जाता है। मॉब-लिंचिंग की इन घटनाओं पर सोचते समय यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि यह फ़ासीवादी राजनीति का ही एक हिस्सा है। शुरू में फ़ासीवादी राजनीति के तहत अल्पसंख्यकों को निशाना बनाया जाता है, उन्हें एक नकली दुश्मन के रूप में पेश किया जाता है, फ़ासीवादी नेतृत्व को बहुसंख्यक समुदाय के अकेले प्रवक्ता और हृदय-सम्राट के रूप में पेश किया जाता है और बाद में हर उस शख़्स को जो फ़ासीवादी सरकार की आलोचना करता है, उसे इस नकली दुश्मन की छवि में समेट लिया जाता है। नतीजतन, केवल किसी अल्पसंख्यक समुदाय को ही काल्पनिक दुश्मन के रूप में नहीं पेश किया जाता बल्कि नागरिक-जनवादी अधिकारों के लिए लड़ने वालों, मज़दूरों व उनकी ट्रेड यूनियनों, और फिर कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों को बहुसंख्यक समुदाय के दुश्मन के रूप में पेश किया जाता है। सिर्फ़ इतना ही नहीं, वह तमाम लोग जो समाज में वैज्ञानिकता, तार्किकता एवं अन्धविश्वास उन्मूलन का काम करते हैं, उन्हें भी मौत के घाट उतार दिया जाता है। दाभोलकर, कलबुर्गी व पनसारे की हत्याएँ इस बात का सबूत है। मॉब लिंचिंग की इन घटनाओं के द्वारा आम लोगों के बीच गोरक्षा व लव-जिहाद जैसे नक़ली मुद्दों को पेश किया जाता है। इन नक़ली मुद्दों में फँसकर मेहनतकश अवाम अपने ज़रूरी एवं असली सवाल न उठा सकें इसलिए ऐसा किया जाता है।

मज़दूरों और मेहनतकशों को याद रखना चाहिए कि अगर वे दमन व उत्पीड़न, फ़ासीवादी हिंसा की हर घटना के ख़िलाफ़ आवाज़ नहीं उठाते तो वे शासक वर्ग, राज्यसत्ता और फ़ासीवादी शक्तियों के हिंसा करने को मौन सहमति देता है और इसी हिंसा का ये प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ कल मज़दूरों और मेहनतकशों के विरुद्ध भी खुलकर इस्तेमाल करेंगी। क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग एक क्रान्तिकारी राजनीतिक वर्ग के तौर पर अपने आपको तभी संगठित कर सकता है जब व शोषण, दमन व उत्पीड़न की हर घटना के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाये चाहे वह उसके देश में हो या फिलिस्तीन में, चाहे वह मुसलमानों, औरतों या दलितों का ख़िलाफ़ हो या फिर दमित राष्ट्रों व राष्ट्रीयताओं के विरुद्ध। यह हमारा बुनियादी उसूल है।

क्रान्तिकारी मनरेगा यूनियन (हरियाणा) द्वारा सदस्यता कार्ड जारी किये गये और आगामी कार्य योजना बनायी गयी

जुलाई माह में हरियाणा के कैथल ज़िले में क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन द्वारा गाँव चौशाला, रामगढ, फरल के मनरेगा मज़दूरों के साथ आम सभा की गयी। सभा में मनरेगा के काम की समस्या से लेकर यूनियन नेतृत्व की कमियों-खामियों

पर आत्मालोचना पेश की गयी व नये सिरे से यूनियन ढाँचे को मज़बूत बनाने की रूपरेखा बनाई गई।

यूनियन साथी अजय ने बताया कि कलायत, कैथल में मनरेगा के काम की जाँच-पड़ताल में पता चला है कि यहाँ किसी भी मज़दूर परिवार को पूरे 100 दिन का रोज़गार नहीं मिलता है, जैसा कि क़ानूनन उसे मनरेगा के तहत मिलना चाहिए। असल में सरकारी क़ानून के तहत 1 वर्ष में एक मज़दूर परिवार को 100 दिन के रोज़गार की गारण्टी मिलना चाहिए। साथ ही क़ानूनन रोज़गार के आवदेन के 15 दिन के भीतर काम देने या काम ना देने की सूरत में बेरोज़गारी भत्ता देने की बात कही गयी है।

मनरेगा के तहत न्यूनतम मज़दूरी भी अलग-अलग राज्यों के हिसाब से तय की गयी है। हरियाणा में अभी फिलहाल 376 रुपये दिहाड़ी तय की गयी है। यह भी बेहद कम है। लेकिन इसके बाद भी मोदी सरकार की मज़दूर विरोधी नीतियों के कारण मनरेगा के बजट में लगातार कटौती की जा रही है। बजट कटौती का सीधा मतलब श्रम दिवस के कम होने और मनरेगा के तहत रोज़गार के अवसरों में भी कमी है। साथ ही, इस बजट का एक बड़ा हिस्सा भी भ्रष्ट अफ़सरशाही की जेब में चला जाता है। इसलिए मनरेगा में भ्रष्टाचार रोकने के लिए व पूरे साल रोजगार, दिहाड़ी 1156 रुपये जैसी माँगों के लिए हमें यूनियन को मज़बूत बनाना होगा।

बैठक में यह तय किया गया है कि नये सिरे से यूनियन का ढाँचा खड़ा करना होगा। साथ ही, मनरेगा मज़दूरों की यूनियन पाठशाला दोबारा शुरू करनी होगी जिसमें मज़दूरों को सिर्फ़ आर्थिक माँगों पर न गोलबन्द करते हुए बल्कि उन्हें समाज परिवर्तन के समूचे मज़दूर वर्ग की लम्बी लड़ाई के लिए भी राजनीतिक तौर पर शिक्षित-प्रशिक्षित किया जाता है। हम सभी जानते हैं कि हमारे देश में जाति व धर्म की कितनी गहरी जड़ें हैं। मज़दूरों की असल लड़ाई लड़ने वाली यूनियन इन जाति-धर्म की दीवारों पर चोट करने के साथ-साथ मज़दूरों में वर्ग एकजुटता पैदा करने का काम करेगी ताकि हर जाति-धर्म से आने वाले मज़दूरों में वर्गीय भावना पैदा की जा सके।

यूनियन की सदस्य मेट मीना ने बताया कि मनरेगा यूनियन मज़दूरों के प्रति जबावदेही की मिसाल देती है। इसलिए यूनियन के अन्दर जनवाद की बहाली के लिए सभी फ़ैसले सामूहिकता में लिये जाते हैं। यूनियन ने अभी तक लगभग 150 से ज्यादा सदस्यता व आई कार्ड जारी किये हैं। आगे आने वाले महीनों में यह प्रक्रिया जारी रखी जायेगी।

– बिगुल संवाददाता

विकास के खोखले दावों की पोल खोलते गिरते पुल, जलभराव, टूटी सड़कें!

● भारत

मोदी सरकार लगातार "देश की तरक्की" का ढोल पीटती रहती है। यह सुहावने ढोल जरा से मानसून की बारिश से धराशायी हो गये। देश का विकास हो रहा है, निर्माण हो रहा है, इस तरह के तमाम दावे मोदी सरकार करती रही है। मोदी के सभी वायदों की तरह यह भी खोखला ही निकला। यहाँ तक कि जिस रामलला को टेंट से निकालकर महल में बसाने के नाम पर मोदी सरकार वोट माँग रही थी, उनके "महल" के छत से भी पानी टपक रहा है! वहीं राम की नगरी अयोध्या भी राम भरोसे हो चुकी है। जिस अयोध्या को स्मार्ट सिटी बनाने की बात की जा रही थी वहाँ की सड़के पूरी तरह पानी में डूब चुकी हैं। यह सिर्फ़ अयोध्या नहीं बल्कि पूरे देश की हालात हैं। देश के कई हिस्सों में एयरपोर्ट की छत से लेकर तमाम सड़कें और पुल, लगातार उन सरकारी नीतियों की भेंट चढ़ते दिख रहे हैं, जिनका नाम पिछले दस सालों में विकास के दावों में बार- बार दोहराया जा रहा था और वोट माँगा जा रहा था। इसके कारणों पर बात करने से पहले, एक बार देश भर में हुए इन हादसों के बारे में जान लेते हैं।

दिल्ली में 28 जून को भारी बारिश के कारण अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा के टर्मिनल 1 का छत का एक हिस्सा गिर गया था, जिसकी वजह से आठ लोग घायल हो गये और एक व्यक्ति की मौत हो गयी। मृतक का नाम रमेश कुमार था और वह कैब ड्राइवर थे। ज्ञात हो कि 10 मार्च को मोदी जी ने दिल्ली हवाई अड्डे के एक टर्मिनल का उद्घाटन किया था।

दिल्ली में 28 जून को एम्स के विभागों और ऑपरेशन थियेटरों में पानी भर जाने से दर्ज़नों सर्जरी रुक गयी और आपातकालीन भर्ती प्रभावित हुई। दीवारों से पानी अन्दर आने और ज़मीन पर जमा होने के कारण ट्रॉमा सेन्टर और कार्डियो न्यूरोसाइंसेस सेन्टर (सीएनसी) के नौ ऑपरेशन थिएटर, जहाँ गम्भीर रूप से बीमार मरीजों को भर्ती किया जाता है, उसे बन्द करना पड़ा। अस्पताल में बिजली कटौती हो गयी और शाम चार बजे के बाद बिजली आपूर्ति बहाल हुई।

'डेक्कन हेराल्ड' में सजित कुमार का कार्टून

मध्य प्रदेश के जबलपुर हवाई अड्डे के नए टर्मिनल भवन का एक हिस्सा 28 जून को भारी बारिश के कारण ढहकर एक कार पर गिर गया। 29 जून को राजकोट में भी भारी बारिश के चलते एयरपोर्ट की कैनोपी टूट गयी। हालांकि, इन हादसों में किसी के घायल या हताहत होने की ख़बर नहीं आयी।

प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने 19 जून 2022 को जिस प्रगति मैदान के सुरंग का उद्घाटन किया था, उसके कुछ समय के बाद से लगातार इसमें पानी का रिसाव हो रहा है। सुरंग की दीवारें ख़राब हो रही हैं और अभी इसे बन्द कर दिया गया है। इस परियोजना की कुल लागत 777 करोड़ रुपये थी। ज्ञात हो कि पिछले साल G20 के लिए प्रगति मैदान का नाम बदलकर भारत मण्डपम तैयार किया गया, उसमें भी भरी बारिश के बाद पानी भर गया था। जी-20 के प्रचार के लिए जिस तरह बेतहाशा पैसा बर्बाद किया गया, उसमें से 2,700 करोड़ रुपए इस मण्डपम के निर्माण में लगाये गये थे। इसका भी उद्घाटन मोदी ने किया था।

जिसे भारत का सबसे लम्बा समुद्री पुल बताया जा रहा था उस अटल सेतु के सम्पर्क मार्ग पर इसके उद्घाटन के छह महीने के भीतर दरारें आ गयी है। नरेंद्र मोदी ने इस साल 12 जनवरी को सी लिंक-अटल बिहारी वाजपेयी सेवरी-न्हावा शेवा अटल सेतु का उद्घाटन किया था। 17,843 करोड़ रुपये की लागत से बने 21.8 किलोमीटर लम्बे इस पुल को मुम्बई महानगर क्षेत्र (एमएमआर) के लिए एक गेम चेंजर और इंजीनियरिंग की एक उपलब्धि के रूप में देखा जा रहा था।

सबसे बुरा हाल तो बिहार का हुआ। नीतीश कुमार के "सुशासन" वाला राज्य देशभर में निर्माण कार्यों के खोखले दावों की पोल खोलने में ज़रूर अव्वल है। 17 दिनों में राज्य में अलग-अलग जगहों पर 12 पुल गिरने की ख़बर आयी और यह सिलसिला अब भी जारी है। सीवान, सारन, मधुबनी, अररिया, चम्पारण, किशनगंज समेत कई ज़िलों में यह घटनाएँ हो चुकी हैं। अत्यधिक बारिश होने के कारण लगातार पुल गिरने की घटनाएँ सामने आ रही है। पुराने पुल की मरम्मत नहीं होने के कारण और नदियों में पानी का प्रवाह तेज़ होने के कारण मिट्टी खिसक जा रही है और पुल गिर जा रही है। ऐसा नहीं है कि राज्य में हाल ही में ऐसी घटनाएँ शुरू हुई है, इसके पहले भी कई बार पुल गिर चुके हैं। पिछले साल भागलपुर में निर्माण के दौरान एक ही पुल दो बार गिर गया। पहले अप्रैल 2022 में और फिर जून 2023 में। 1700 करोड़ रुपए इस पुल में लगे थे। सबसे अजीब बात यह है कि एक बार पुल गिर जाने के बाद उसी कम्पनी को ठेका दिया गया। क़ायदे से इसका निर्माण 2019 में पूरा हो जाना था, मगर 3 साल देर करने के बाद जो निर्माण हमारे सामने होता है वह भरभराकर गिर जाता है। उस कम्पनी का नाम सिंगला कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड है। यह वही कम्पनी है जिसने 10 मई 2019 को 75 लाख का इलेक्टोरल बॉण्ड ख़रीदा था। साफ़ है कि यहाँ भी 'चन्दा दो और धन्धा लो' का फ़ार्मूला अपनाया गया।

मुम्बई में एक दिन की बारिश के बाद मध्य रेलवे पर चूनाभट्टी, भांडुप और कुर्ला में ट्रैक पर करीब 9 इंच तक पानी जमा हो गया, जिससे रेल सेवाएँ रोकनी पड़ीं। कई लम्बी दूरी की ट्रेनों को भी रद्द करना पड़ा, तो कई ट्रेनों का समय बदलकर चलाया गया।

यह महज़ चन्द उदाहरण थे, यह हालत अभी पूरे देश की है। सरकार की चाटुकार गोदी मीडिया इसपर पूरी तरह लीपापोती करने में लगी है। याद कीजिए, मोदी सरकार के वायदे कि देश को "मज़बूत बनाया जायेगा" पर उन्होंने मज़बूत बनाया है देश के पूँजीपतियों को बड़ी कम्पनियों को, जिन्होंने मोदी सरकार को करोड़ों रुपये का चन्दा दिया और बदले में मोदी ने उन्हें धन्धा दिया। यह साफ़ दर्शाता है कि मोदी सरकार के राज में भ्रष्टाचार अपने चरम पर है। यह स्पष्ट है कि जनता की गाढ़ी कमाई का हिस्सा मन्त्रियों व ठेकेदारों के साथ गठजोड़ और भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ जाता है। बीते वर्ष आयी कैग की रिपोर्ट में सड़क एवं परिवहन मन्त्रालय के घोटाले का ज़िक्र है। द्वारका एक्सप्रेस-वे के एक किलोमीटर सड़क निर्माण के लिए 18 करोड़ की राशि का ख़र्च अनुमोदित किया गया था। लेकिन यहाँ एक किलोमीटर सड़क बनाने में लगभग 250 करोड़ रुपये ख़र्च किये गये हैं! इसमें अनुमानित राशि से 14 गुना अधिक राशि आवण्टित की गयी है। केवल द्वारका एक्सप्रेस-वे में ही नहीं बल्कि भारत सरकार के सड़क एवं परिवहन निर्माण विभाग के भारतमाला परियोजना के अन्य प्रोजेक्टों में भी काफ़ी गड़बड़ियाँ मौजूद हैं। कैग के अनुसार भारतमाला परियोजना में अनुमोदित राशि से लगभग 58 फ़ीसदी राशि अधिक आवण्टित की गयी। परियोजना को महँगा करने के बावजूद काम तय समय पर नहीं हुआ। मामला केवल वित्तीय गड़बड़ियों का नहीं है बल्कि इसमें और भी कई प्रकार की गड़बड़ियाँ हैं। उन बोली लगाने वालों को भी काम दिया गया है जिसके पास वाजिब दस्तावेज़ तक नहीं थे। यानी फर्ज़ी दस्तावेज़ के आधार पर बोली लगाने वालों का चयन करने के मामले भी सामने आये हैं।

महँगाई, बेरोज़गारी और भुखमरी से त्रस्त आम जनता को तो मोदी सरकार बोलती है कि विकास के लिए कुछ समय के लिए हम अधिकार भूल जायें और केवल कर्तव्य की बात करें! हमें संघ परिवार और भाजपा "संस्कार", "संस्कृति", "राष्ट्रवाद" और "देशभक्ति" की नसीहतें देती है और कहती है कि हम "रामराज्य" लाने के लिए पेट पर पट्टी बाँध लें और त्याग करें! हमें "सन्तोषम परम सुखम" का उपदेश दिया जाता है! वहीं दूसरी ओर अडानियों-अम्बानियों, बड़ी-बड़ी कम्पनियों और भाजपा के नेता-मन्त्रियों को तिजोरियाँ और पेट ठूँस-ठूँसकर भरने के लिए भ्रष्टाचार करने का पूरा अवसर दिया जाता है। ऐसे में, जिस "चाल-चेहरा-चरित्र" की दुहाई भाजपा और संघ परिवार हमेशा दिया करते थे, मानसून की एक बारिश ने ही सारे विकास की कलई पूरी तरह से खोल कर रख दिया और यह सिर्फ़ इस साल की बात नहीं है।

यह हमें पता होना चाहिए कि हमसे ही वसूले गये टैक्स के पैसे को सरकार इन पब्लिक सेक्टर के कामों में लगाती है। इसका ठेका प्राईवेट कॉन्ट्रैक्टर व कम्पनियों को दिया जाता है और जो भाजपा को अधिक चन्दा देता है, इन कामों का ठेका उन्हें दे दिया जाता है। आपको याद ही होगा पिछले साल उत्तराखण्ड में जिस सुरंग के ढहने से मज़दूर फँस गये थे, उस सुरंग का निर्माण करने वाली कम्पनी नवयुग इन्जीनियरिंग ने भाजपा को 55 करोड़ का चन्दा दिया था। इससे पहले भी यह कम्पनी ज़मीन अधिग्रहण और प्रोजेक्ट तैयार करने को लेकर भी विवाद में लिप्त थी, पर भाजपा ने इनको धन्धा देकर अपना धर्म निभाया। ऐसे में सरकार द्वारा जारी तमाम टेण्डरों में भ्रष्टाचार होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

चुनाव जीतने के लिए मोदी सरकार ने तमाम पुलों व इमारतों को हड़बड़ी में बनवाकर उसका उद्घाटन कर दिया, जैसे कि राम मन्दिर। यह भी एक कारण है कि तमाम निर्माण इतने कमज़ोर होते हैं। वहीं इन भ्रष्टाचारों की मार भी मज़दूरों-मेहनतकशों को ही झेलनी पड़ती है। एक तो ठेका प्रथा को बढ़ावा दिया जाता है ताकि मज़दूरों के लिए कोई श्रम क़ानून न लागू करना पड़े। दूसरा, जब ऐसे हादसे होते है, उसमें जान गवाने वाले भी ग़रीब ही होते हैं। यानी हम ही टैक्स भरे, हम ही निर्माण करें और हम ही मारे जायें और नेता-पूँजीपति-ठेकेदार मौज उड़ाएँ।

हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन के कमाण्डर, देश के सच्चे क्रान्तिकारी सपूत, आज भी सच्ची आज़ादी और इन्साफ़ के लिए लड़ रहे हर नौजवान के प्रेरणास्रोत

चन्द्रशेखर आज़ाद

के जन्मदिवस (23 जुलाई) पर

"आज़ाद का समाजवाद की ओर आकर्षित होने का एक और भी कारण था। आज़ाद का जन्म एक बहुत ही निर्धन परिवार में हुआ था और अभाव की चुभन को व्यक्तिगत जीवन में उन्होंने अनुभव भी किया था। बचपन में भावरा तथा उसके इर्द-गिर्द के आदिवासियों और किसानों के जीवन को भी वे काफ़ी नज़दीक से देख चुके थे। बनारस जाने से पहले कुछ दिन बम्बई में उन्हें मज़दूरों के बीच रहने का अवसर मिला था। इसीलिए, जैसा कि वैशम्पायन ने लिखा है, किसानों तथा मज़दूरों के राज्य की जब वे चर्चा करते तो उसमें उनकी अनुभूति की झलक स्पष्ट दिखायी देती थी।

आज़ाद ने 1922 में क्रान्तिकारी दल में प्रवेश किया था। उसके बाद से काकोरी के सम्बन्ध में फ़रार होने तक उन पर दल के नेता पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल का काफ़ी प्रभाव था। बिस्मिल आर्य समाजी थे। और आज़ाद पर भी उस समय आर्य समाज की काफ़ी छाप थी। लेकिन बाद में जब दल ने समाजवाद को लक्ष्य के रूप में अपनाया और आज़ाद ने उसमें मज़दूरों-किसानों के उज्ज्वल भविष्य की रूपरेखा पहचानी तो उन्हें नयी विचारधारा को अपनाने में देरी न लगी।"

(आज़ाद व भगतसिंह के साथी क्रान्तिकारी शिव वर्मा की किताब 'संस्मृतियाँ' का एक अंश)

गिग व प्लेटफॉर्म अर्थव्यवस्था के मज़दूरों के श्रम अधिकारों को छीनने के लिए कर्नाटक की कांग्रेस सरकार लायी ख़तरनाक मसविदा क़ानून

● गायत्री भारद्वाज

राहुल गाँधी की "मुहब्बत की दुकान" में मज़दूरों के लिए कोई जगह नहीं है। वहाँ मालिकों, ठेकेदारों, व्यापारियों, कुलकों और मुश्किल से मध्यम वर्ग तक के लिए जगह है। इसका सबूत लगातार कांग्रेस की राज्य सरकारें दे रही हैं। चुनाव के पहले भी दे रही थीं और अब भी दे रही हैं। चाहे हसदेव के जंगल को कारपोरेट धन्नासेठों के हाथों बरबाद होने के लिए सौंपना हो, या गिग व प्लेटफॉर्म अर्थव्यवस्था के मज़दूरों को मज़दूर पहचान से ही वंचित करने वाला राजस्थान की भूतपूर्व कांग्रेस सरकार का क़ानून हो, या फिर अब, कर्नाटक की सिद्दरमैया सरकार द्वारा 9 जुलाई को पेश कर्नाटक प्लेटफॉर्म-बेस्ड गिग वर्कर्स (सोशल सिक्योरिटी एण्ड वेलफेयर) बिल, 2024 का मसविदा हो। ज्ञात हो कि प्लेटफॉर्म आधारित गिग वर्कर्स वे होते हैं जो ओला, ऊबर, स्विगी, ज़ोमैटो, इंस्टामार्ट, अर्बन कम्पनी आदि जैसे प्लेटफॉर्मों के लिए काम करते हैं, मसलन, कैब चालक, होम डिलिवरी मज़दूर आदि। इन मज़दूरों की संख्या 2020 में ही 77 लाख थी। अब यह करीब 85 लाख तक पहुँच चुकी होगी और यह अनुमान लगाया गया है कि 2029-30 तक इनकी संख्या 2.35 करोड़ होगी। यह भारत की कुल कार्यशक्ति (मज़दूरों की तादाद) का करीब 1.5 प्रतिशत है।

कर्नाटक सरकार द्वारा पेश उपरोक्त बिल का मसविदा बिल्कुल वैसा ही है जैसा कि राजस्थान की भूतपूर्व कांग्रेस सरकार द्वारा पेश बिल का था। इसका मुख्य लक्ष्य यह है कि इन गिग मज़दूरों और प्लेटफॉर्म कम्पनियों के बीच के रोज़गार सम्बन्ध को ही नकार देना, ताकि इन मज़दूरों की मज़दूर पहचान ही उनसे छीन ली जाय। इसका प्लेटफॉर्म अर्थव्यवस्था के पूँजीपतियों को क्या फ़ायदा होगा? इसका यह फ़ायदा होगा कि औपचारिक तौर पर मज़दूरों को जो थोड़े-बहुत श्रम अधिकार प्राप्त हैं, उन पर इन गिग मजदूरों का कोई दावा नहीं होगा। यानी पुराने श्रम क़ानूनों के तहत और नये फ़ासीवादी लेबर कोड के तहत ये मज़दूर आयेंगे ही नहीं। ये प्लेटफॉर्म अपने आपको नियोक्ता नहीं मानते। ये कहते हैं कि हम तो 'एग्रीगेटर' हैं, यानी बस सूचना जुटाने का काम करते हैं। ये उपभोक्ताओं की सूचना और सेवा-प्रदाताओं की सूचना जुटाते हैं और उनको एक-दूसरे से साझा कर देते हैं, बदले में वे अपना हिस्सा यानी कमीशन लेते हैं। इनका दावा है कि ये मज़दूर उनके कर्मचारी नहीं हैं क्योंकि अपने काम के मालिक वे खुद हैं।

लेकिन वास्तव में ऐसा है क्या? नहीं। सच्चाई यह है कि सेवा की कीमत ये कम्पनियाँ तय करती हैं, सेवा की स्थितियाँ और शर्तें भी ये कम्पनियाँ ही तय करती हैं। मिसाल के तौर पर, एक ऊबर कैब चालक को देखिये। राइड की कीमत कम्पनी तय करती है, राइड की शर्तें व स्थितियाँ कम्पनी तय करती है, और इनका इस्तेमाल कर बात-बात पर चालकों के भुगतान से कटौती भी करती हैं। यहाँ पर श्रम और पूँजी का सम्बन्ध इसलिए छिप जाता है क्योंकि कैब चालक सीधे कम्पनी के साथ किसी क़रार के तहत नौकरी में नहीं है। लेकिन ऐसा तो सभी कैजुअल मज़दूरों के साथ होता है। यह भी सच है कि कैब चालक कुछ मामलों में अपनी गाड़ी के मालिक होते हैं। यानी, वे अपने श्रम के उपकरण के मालिक हैं। यह भी आम तौर पर सभी कैजुअल मज़दूरों के साथ होता है जैसे कि इलेक्ट्रीशियन, प्लम्बर, मिस्त्री आदि। लेकिन वे इन श्रम के उपकरणों का पूँजी के रूप में उपयोग नहीं कर पाते क्योंकि उत्पादन की स्थितियों पर उनका नियन्त्रण नहीं है। ऊबर या ओला जैसी कैब कम्पनियों के मामले में जिस माल का उत्पादन हो रहा है वह एक सेवा है, यानी परिवहन। यह एक ऐसा विशेष माल होता है जिसका उत्पादन और उपभोग एक साथ होता है, अलग-अलग समय में नहीं। एक इलेक्ट्रीशियन, प्लम्बर आदि के पास भी अपने श्रम के उपकरण होते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वह एक स्वतन्त्र माल उत्पादक है। वजह यह कि उसके द्वारा दी जाने वाली सेवा, यानी माल का उत्पादन, उसके फ़ैसलों पर निर्भर नहीं करता है। उसे कोई काम देता है। यदि कोई कम्पनी उसे काम देती है और उसके द्वारा उत्पादित सेवा (जो कि एक माल ही है) को बेचती है, तो वह कम्पनी यह माल उत्पादन करवा रही है, उसे बेच रही है और उस इलेक्ट्रीशियन या प्लम्बर के बेशी श्रम का शोषण कर रही है, यानी उसे महज़ उसकी श्रमशक्ति का मूल्य दे रही है, जबकि उसके द्वारा उत्पादित माल का मूल्य उससे कहीं ज़्यादा है। यह अन्तर ही बेशी मूल्य है जो कम्पनी के पास मुनाफ़े के रूप में आ रहा है।

इसी प्रकार, एक गाड़ी का स्वामी कैब चालक यदि किसी प्लेटफॉर्म कम्पनी से सम्बद्ध नहीं है, खुद ही अपनी टैक्सी शहर में चला रहा है, अपनी इच्छा से सवारी लेता या छोड़ता है, तो वह एक स्वतन्त्र माल उत्पादक हुआ। कहने के लिए राइड न लेने का अधिकार औपचारिक तौर पर ओला या ऊबर के चालक के पास भी होता है। लेकिन यदि कोई चालक कई राइड्स को मना करता रहेगा, तो उसके पास राइड आना ही कम होता जायेगा। नतीजतन, उत्पादन की स्थितियों पर यह नियन्त्रण केवल औपचारिक और कागज़ी है। वास्तव में, नियन्त्रण कम्पनी के पास होता है। लुब्बेलुआब यह कि एक प्लेटफॉर्म-आधारित कम्पनी के लिए काम करने वाला गिग मज़दूर वास्तव में उस कम्पनी का ही मज़दूर है, वह कम्पनी ही उसकी नियोक्ता है और उसके उजरती श्रम का शोषण करती है। सीधा क़रार न होना और अक्सर अपने श्रम के उपकरणों का मालिक होना, इन मज़दूरों की मज़दूर पहचान पर रहस्य का पर्दा डाल देती है। लेकिन यह पर्दा झीना ही होता है और ज़रा-सी बारीक निगाह आपका साबका सच्चाई से सामना करवा देती है।

कर्नाटक सरकार द्वारा पेश बिल का मसविदा वास्तव में इस रहस्य के पर्दे का इस्तेमाल करता है। यह मसौदा इन कम्पनियों के लिए वही शब्द इस्तेमाल करता है, जो ये कम्पनियाँ ख़ुद अपने लिए इस्तेमाल करती हैं ताकि अपनी नियोक्ता की पहचान को छिपा सकें। यह शब्द है 'एग्रीगेटर', यानी एक निर्दोष मासूम धन्नासेठ जिसकी कम्पनी महज़ सूचना एकत्र करके साझा करने का महान पवित्र काम कर रही है। इन कम्पनियों के पास एक उन्नत तकनोलॉजी है, एक उन्नत उत्पादन का साधन है जिसके ज़रिये ये इन तमाम स्वतन्त्र माल उत्पादकों को अपने उजरती मज़दूर में तब्दील करती हैं और वह भी उन्हें उनकी मज़दूर पहचान दिये बग़ैर। इसी चाल को कर्नाटक कांग्रेस सरकार का बिल स्वीकार करता है। यह इन मज़दूरों को भी स्वतन्त्र संविदाकार/स्वरोज़गार-प्राप्त मज़दूर बोलता है और कम्पनी से उनके औद्योगिक सम्बन्ध, यानी रोज़गार के सम्बन्ध को स्वीकार करने से इन्कार कर देता है। यह बिल इन मज़दूरों को 8 घण्टे से ज़्यादा समय देने के बावजूद न्यूनतम मज़दूरी, कार्यदिवस की लम्बाई, स्वैच्छिक ओवरटाइम व डबल रेट से भुगतान, व सुरक्षा प्रावधानों सम्बन्धी अधिकारों से वंचित कर देगा। कैब कम्पनियों द्वारा अतिश्रम के कारण तमाम कैब चालकों से एक्सीडेण्ट हो रहे हैं क्योंकि उनका मेहनताना इतना कम है कि परिवार के गुज़ारे लायक कमा पाने के लिए उन्हें 12 से 15 घण्टों तक भी काम करना पड़ता है। नतीजतन, उनकी जान भी ख़तरे में पड़ती है और सवारियों की जान भी। यह और कुछ नहीं बल्कि इन कम्पनियों की मुनाफ़े की अन्धी हवस है जिसके नतीजे के तौर पर यह हो रहा है।

जब तक इन गिग मज़दूरों को नियोक्ता-नियुक्त सम्बन्ध, यानी पूँजी व श्रम के सम्बन्ध के संस्थागत रूप में नहीं लाया जायेगा, दूसरे शब्दों में, जब तक इन मज़दूरों को मज़दूर की पहचान नहीं दी जायेगी और इन प्लेटफॉर्म आधारित एग्रीगेटर कम्पनियों की नियोक्ता के तौर पर पहचान कर वह सारी जिम्मेदारी व जवाबदेही लेने की क़ानूनी व्यवस्था बहाल नहीं की जायेगी जो कि श्रम अधिकारों के तहत एक नियोक्ता की होती है, तब तक ऐसी स्थिति बनी रहेगी। सवाल यह है कि गिग मज़दूरों व इन कम्पनियों के बीच के रिश्ते को औद्योगिक सम्बन्ध, रोज़गार सम्बन्ध माना जाये ताकि वे सभी अधिकार औपचारिक तौर पर इन गिग मज़दूरों को मिलें, जो कम-से-कम क़ानूनी तौर पर हरेक कर्मचारी या मज़दूर को मिलने चाहिए। लेकिन कांग्रेस सरकार ने एक सामाजिक सुरक्षा का क़ानून इन्हें दिया है, जबकि ज़रूरत थी इन्हें औद्योगिक व श्रम क़ानूनों के मातहत लाने की। ऐसे कल्याणकारी क़ानूनों का न तो अतीत में कोई ख़ास लाभ लोगों को मिला है न अब मिलेगा। निर्माण मज़दूर कल्याण क़ानून (1996) का हश्र क्या हुआ है वह सबके सामने है। उसी प्रकार असंगठित मज़दूर सामाजिक सुरक्षा क़ानून का क्या हुआ है, यह भी सबको पता है। असल बात थी ऐसे सभी मज़दूरों के लिए सख्त श्रम क़ानूनों को बनाना। लेकिन उसकी जगह इस प्रकार के सामाजिक सुरक्षा या कल्याणकारी क़ानून लाये जाते हैं। क्यों?

इसका कारण यह है कि ऐसे क़ानून पूँजीपतियों को सभी ज़िम्मेदारियों से मुक्त कर देते हैं। अब मज़दूर पूँजीपति को क़ानूनी तौर पर कठघरे में नहीं खड़ा कर सकता, चाहे उसे उसके बुनियादी श्रम अधिकार मिलें या न मिलें। पूँजीपति उसे न्यूनतम मज़दूरी न दे, काम के घण्टे 8 से ज़्यादा रखे, सुरक्षा के उपकरण व इन्तज़ामात मुहैया न कराये, तो मज़दूर पूँजीपति के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता है। उसे बस इस अमानवीय शोषण व गुलामी को स्वीकार करने के बदले सरकार की ओर से कुछ कल्याणकारी राहत दिये जाने का वायदा किया जाता है और वह भी कभी पूरा नहीं किया जाता। यानी, पूँजीवादी मालिक औपचारिक व अनौपचारिक दोनों प्रकार से कठघरे से बाहर, तथा पूँजीवादी सरकार वास्तव में यानी अनौपचारिक तरीके से कठघरे से बाहर। पूँजीपति का सिरदर्द ख़त्म और सरकार को भी इन कल्याणकारी क़ानूनों से वास्तव में कोई ख़ास सिरदर्द नहीं होगा क्योंकि इन योजनाओं का फ़ायदा भी मज़दूरों को तभी मिलेगा जब वे संगठित होकर इसके लिए संघर्ष करें।

संक्षेप में, कांग्रेस पार्टी और उसकी विभिन्न राज्य सरकारों की नीति और फ़ासीवादी मोदी सरकार की नीति में एक ही फ़र्क है। कांग्रेस सरकारें भी मोदी सरकार के ही समान पूँजीपतियों को सभी विनियमनकारी व वैधिक बाध्यताओं से मुक्त कर रही है, हालाँकि उस आक्रामकता व रफ़्तार से नहीं जिससे मोदी सरकार कर रही है, लेकिन साथ में कांग्रेस सरकार इसकी एवज़ में कुछ कल्याणकारी क़ानून भी बना रही है जिससे कि मज़दूर वर्ग का असन्तोष व गुस्सा कालान्तर में फट न पड़े। यह दीगर बात है कि भारत का पूँजीपति वर्ग मुनाफ़े की गिरती औसत दर से इस कदर बिलबिलाया और किलकिलाया हुआ है कि वह यह भी नहीं चाहता कि पूँजीवादी सरकार ऐसे कल्याणवाद का ख़र्च उठाये। या फिर अगर ऐसा दिखावटी कल्याणवाद करना भी है तो इसके लिए प्रत्यक्ष कर व कारपोरेट करों में बढ़ोत्तरी कतई न की जाये और इसका बोझ भी बढ़े हुए अप्रत्यक्ष करों के रूप में आम मेहनतकश जनता पर डाला जाय। मोदी सरकार ठीक इन्हीं आदेशों का पालन करती आयी है। अव्वलन तो उसने वेलफेयर का ही फेयरवेल पूरा कर दिया है, और जहाँ कहीं लोकरंजकता की राजनीति द्वारा उपस्थित बाध्यताओं के कारण उसे कुछ दिखावटी कल्याणवाद करना भी पड़ता है, वहाँ उसका ख़र्च वह जनता से ही वसूलती है। लेकिन कांग्रेस सरकार पूँजीपतियों की सेवा के प्रति कोई कम प्रतिबद्धता नहीं रखती है। राहुल गाँधी चाहे "मुहब्बत की दुकान" की जितनी भी बात करें, हमें यह समझ लेना चाहिए कि कांग्रेस भी कुछ अलग अन्दाज़ में पूँजीपति वर्ग की ही सेवा करने का काम करती है। मज़दूरों को एक स्वर में राहुल गाँधी को यह बता देना चाहिए कि हमें "मुहब्बत की दुकान" और "सर्वधर्म सम्भाव" की हवा मिठाई नहीं चाहिए बल्कि मेहनतकश अवाम के सदस्य के तौर पर हमारे जायज़ श्रम अधिकार और सच्चा सेक्युलरिज़्म चाहिए।

एक धनपशु के बेटे की शादी का अश्लील तमाशा और देश के विकास की बुलन्द तस्वीर!

● अन्वेषक

हमारा देश आज विकास की बुलन्दियों पर पहुँच चुका है। आज पूरी दुनिया हमारे देश की ओर ही देख रही है क्योंकि पूरी दुनिया के तमाम बड़े-बड़े आसामी हमारे देश में पधार रहे हैं। वे सब यहाँ अम्बानी के बेटे की शादी में शामिल होने आये हैं। हर जगह यही छाया हुआ है कि अम्बानी के बेटे की शादी हो रही है। पर ये शादी ऐसे ही शुरू नहीं हुई। इससे पहले शुरु हुई प्री वेडिंग यानी शादी के पहले की शादी और यह भी एक नहीं बल्कि तीन-तीन प्री वेडिंग हुई। बताया जा रहा की इस शादी का पूरा खर्च 5000 करोड़ रुपये है। यह अम्बानी के लिए बहुत ज़्यादा नहीं है बल्कि यह उनके लिए मामूली खर्च है। यह खर्च उनकी कुल संपत्ति का 0.5 प्रतिशत ही है। गूगल के सीईओ से लेकर इंग्लैंड के पूर्व प्रधानमन्त्री तक इस शादी में पहुँच रहे हैं। हॉलीवुड के तमाम "सितारे" भी इसमें शामिल हैं। हमारे देश की मीडिया में तो इसको लेकर गज़ब का उत्साह है। शादी में कौन आया! किसने क्या किया! अम्बानी कैसे नाचा! खाने में क्या क्या है! फूफा जी किस बात पर नाराज़ हुए! सब बात पर नज़र हमारी मीडिया बनाये हुए है। वॉर फुट पर इसकी रिर्पोटिंग चालू है, ताकि देश के लोग शादी को अच्छे से टीवी पर देख सकें। देश के सेवा करने वाले इन तमाम चैनलों में अम्बानी जी के भी कई चैनल शामिल हैं। आज देश के लिए भला इससे बड़ा ज्वलन्त मुद्दा क्या हो सकता है?

"देशभक्त" लोग तो इस विकास को देखकर हर्षातिरेक के शिकार हो रहे हैं। उनसे कोई पूछता है कि 'भइया सब तो ठीक है, लेकिन ये महँगाई बढ़ गयी, काम-धन्धा मिलना भी मुश्किल हो रहा है, सड़क-पुल सब टूट रहे हैं, शादी के कारण यातायात प्रभावित हो रहा है। तो आप ही बताइए न, क्या करें?' देशभक्त महोदय कहते हैं-"अम्बानी के बेटे की शादी देखो, दुनिया के सब बड़का-बड़का लोग आ रहे हैं, पूरा मुम्बई को शादी में आने का न्यौता मिला है, जाओ तुम भी चले जाओ, वहीं खाना खा लेना। वहाँ कोई महँगाई-वहँगाई नहीं करता, सब अच्छे से जीते हैं। शादी में बुलाया है, तो जाकर आराम से खाना खाओ, सड़क पर निकलने की ज़रूरत ही क्या है! खाना शादी का खा लो, घर पर रहो आराम करो और अनन्त को आशीर्वाद दो! पर धिक्कार है तुम जैसे लोगो पर! देश के विकास से तुम्हे कोई लेना देना नहीं, देश का नाम हो रहा है और तुम्हे इन छोटी-मोटी बातों की पड़ी है! हे राम! क्या होगा देश का!"

अम्बानी जी अम्बानी जी बने कैसे! इसके पीछे उनकी वर्षों की कड़ी मेहनत है। लोगों को लूटकर, उनके ख़ून में से सिक्के निकालना भी बड़ी मेहनत का काम है! तभी तो अम्बानी और उनकी ज़मात यहाँ तक पहुँची है! ये सारा पैसा जो शादी में खर्च हो रहा है अम्बानी जी ने बड़ी मेहनत से कमाया है। पब्लिक सेक्टर की कम्पनियाँ, जिसे खड़ा करने में कई सालों का समय लगा, जिसमें देश के आम लोगों के टैक्स का पैसा लगा था, उन कम्पनियों को बहुत मेहनत करके अम्बानी ने उसे अपनी निजी सम्पत्ति बनाया। लोगों को निचोड़कर, उनका शोषण करना भी बहुत मेहनत का काम है! इतनी मेहनत के बाद वह विकास की ऊँचाईयों पर पहुँचते गये ताकि देश सेवा कर सकें। क्या हुआ अगर उनकी सम्पत्ति के साम्राज्य के नीचे हज़ारों मेहनतकश दबे कुचले पड़े हैं! "राष्ट्र" के विकास के लिए तो जान देनी ही पड़ती है। तभी तो अम्बानी के ज़मात के लोग कहते हैं की उनकी तरह हमें भी 20-20 घण्टे काम करना चाहिए!

बाक़ी सुनने में तो आ रहा है कि अपने प्रधानमन्त्री भी इस शादी में पहुँचेंगे। मोदीजी अम्बानी का ख़्याल रखते हैं, अम्बानी जी देश का ख़्याल रखते हैं। देखा! यही तो है ट्रिकल डाउन सिद्धान्त! स्वयंसेवा ही देश सेवा है! तभी तो अम्बानी जी इतने

अच्छे से देशसेवा कर पा रहे हैं। अब सोचिए मोदी जी को जिताने में कितने पैसे लगे! आख़िर मेहनत की न उन्होंने! और जीते मोदी जी! लोगो की आँखों पर पट्टी बाँधने में भी तो मेहनत लगती है। अब मोदी जी ऐसे देशप्रेमी को उपहार के तौर पर सरकारी मोबाइल टॉवर दे दिये ताकि वह देश सेवा कर सके! इसलिए तो देश के विकास के लिए सबको तीन महीने तक फ्री नेट दिया, मोबाइल सबके हाथ में पहुँचा दिया (मोदीजी के साथ मिलकर)! उन्होंने देश को तीन महीने तक फ्री नेट दिया पर जब बस 25-30 प्रतिशत की बढ़ोतरी उन्होंने मोबाइल रिचार्ज की कीमत में की तो देश के लोगों को दिक्कत होने लगी। एक सच्चे देशभक्त की तरह हमें जियो से ही रिचार्ज करना चाहिए, भले ही आप बेरोज़गार हो, घर में हरी सब्जी भी ना आ रही हो, बच्चा स्कूल न जा रहा हो। देखिए भाई देश के विकास के लिए इतनी कुर्बानी तो देनी होगी।

कई लोग कह रहे हैं अम्बानी के पुत्र की प्री-वेडिंग के जलसों में हो रहा 5000 करोड़ का ख़र्च फिज़ूलखर्च है। नहीं भाई! यह फिज़ूलखर्च नहीं यह दान-धर्म का काम है। दान-धर्म का काम है तभी तो इतने विदेशी सितारों को बुलाया ताकि हमारी देश की जनता का मनोरंजन हो। बिचारे बॉलीवुड वाले भी सोच रहे हैं कि उनमें क्या कमी रह गयी कि अम्बानियों-अडानियों की दावतों में इतने कूल्हे मटकाने के बावजूद अन्य देश से कलाकारों को बुलाया! खैर, यह सब दान-धर्म का काम है, सब लोग नहीं कर सकते।

आपने भी देखा ही होगा अम्बानी का लड़का जानवरों से कितना प्यार करता है। हाथी को अपने हाथ से खाना बनाकर खिलाता है, कुत्ते-बिल्लियों की तरह अपने कर्मचारियों को भी प्यार करता है! पता है शादी के तोहफ़े के तौर पर अपने कर्मचारियों को अम्बानी ने नमकीन मिठाई के पैकेट दिये। देखा कितने दरियादिल है! इन्सान और जानवर में कोई भेद नहीं करते। ऐसे लोग जब कोई काम करते है तो वह दान-धर्म का काम कहलाता है, फिज़ूलखर्च नहीं!

यही तो होता है देश का विकास। समूचे देश के राष्ट्रवादी व देशभक्त एकजुट होकर अभी इसी शादी में लगे हुए हैं। यह एक प्रकार से इस समय राष्ट्रवादी होने का सबसे अच्छा तरीका है। जब देश में विकास अपने चरम पर पहुँच जाता है तब छोटी-मोटी समस्याएँ दिखनी बन्द हो जाती है। भगदड़ में लोग मर जाते हैं, नौजवानों को नौकरी नहीं मिल रही, सभी समान महँगे हो रहे हैं, मॉब लिंचिंग हो रही है, धर्म के नाम पर क़त्ल हो रहे हैं, आदि-आदि। विकास के चरम पर पहुँच कर यह सब मोहमाया दिखने लगता है। अम्बानी और उनके जमात के लोग और उन सबके चहेते मोदी जी देश को इसी विकास की चरम अवस्था में ले जाना चाहते हैं। और भाई यही तो समानता होती है! भारत का संविधान भी तो कहता है सब बराबर हैं! तो आज अम्बानी जी के बराबर मैं खड़ा हूँ, आप खड़े हो! आख़िर अम्बानी जी मुझे और आपको लूट कर ही तो इतनी सम्पत्ति बना पाये, यानी इस शादी में हमारा भी हिस्सा बनता है। हुआ न फिर देश का विकास क्योंकि अम्बानी ही तो देश हैं। अम्बानी आगे बढ़ेंगे तभी तो देश आगे बढ़ेगा!

भगतसिंह ने कहा...

क्रान्ति से हमारा अभिप्राय है – अन्याय पर आधारित मौजूदा समाज-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन।

समाज का प्रमुख अंग होते हुए भी आज मज़दूरों को उनके प्राथमिक अधिकार से वंचित रखा जा रहा है और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शोषक पूँजीपति हड़प जाते हैं। दूसरों के अन्नदाता किसान आज अपने परिवार सहित दाने-दाने के लिए मुहताज हैं। दुनिया भर के बाज़ारों को कपड़ा मुहैया करने वाला बुनकर अपने और अपने बच्चों के तन ढँकने-भर को भी कपड़ा नहीं पा रहा है। सुन्दर महलों का निर्माण करने वाले राजगीर, लोहार तथा बढ़ई स्वयं गन्दे बाड़ों में रहकर ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर जाते हैं। इसके विपरीत समाज के जोंक – शोषक पूँजीपति ज़रा-ज़रा-सी बातों के लिए लाखों का वारा-न्यारा कर देते हैं।

यह भयानक असमानता और ज़बरदस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिये जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक क़ायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है कि आज का धनिक समाज एक भयानक ज्वालामुखी के मुख पर बैठकर रंगरेलियाँ मना रहा है और शोषकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग एक भयानक खड्ड की कगार पर चल रहे हैं।

•••

सभ्यता का यह प्रासाद यदि समय रहते सँभाला न गया तो शीघ्र ही चरमराकर बैठ जायेगा। देश को एक आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। और जो लोग इस बात को महसूस करते हैं उनका कर्तव्य है कि साम्यवादी सिद्धान्तों पर समाज का पुनर्निर्माण करें। जब तक यह नहीं किया जाता और मनुष्य द्वारा मनुष्य का तथा एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण, जिसे साम्राज्यवाद कहते हैं, समाप्त नहीं कर दिया जाता तब तक मानवता को उसके क्लेशों से छुटकारा मिलना असम्भव है, और तब तक युद्धों को समाप्त कर विश्व-शान्ति के युग का प्रादुर्भाव करने की सारी बातें महज़ ढोंग के सिवा और कुछ भी नहीं हैं। क्रान्ति से हमारा मतलब अन्ततोगत्वा एक ऐसी समाज-व्यवस्था की स्थापना से है जो इस प्रकार के संकटों से मुक्त होगी और जिसमें सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य सर्वमान्य होगा। और जिसके फलस्वरूप स्थापित होने वाला विश्व-संघ पीड़ित मानवता को पूँजीवाद के बन्धनों से और साम्राज्यवादी युद्ध की तबाही से छुटकारा दिलाने में समर्थ हो सकेगा।

(बम काण्ड पर सेशन कोर्ट में बयान के अंश)

जन विरोध के बाद लखनऊ में हज़ारों घरों पर बुलडोज़र चलाने से पीछे हटी योगी सरकार

अवैध ढंग से उजाड़े गये अकबरपुर के हज़ारों लोगों को वापस उनकी जगह पर बसाओ और मुआवज़ा दो!

"मनमानी" कार्रवाई करने वाले दोषी अफ़सरों पर कठोर कार्रवाई करो!

● लालचन्द्र

बुलडोज़र पर सवार उत्तर प्रदेश की योगी सरकार लखनऊ के बीचोबीच अकबरनगर के हज़ारों घरों की बस्ती को नेस्तनाबूद करने के बाद सत्ता के नशे में पगला गयी थी। किसी बड़े विरोध के बिना पूरी बस्ती को बुलडोज़रों से रौंदने में सफल होने से उसके हौसले और भी बुलन्द हो गये थे और कुकरैल नाले (जिसे जबरन नदी घोषित कर दिया गया) के किनारे बसी पंतनगर, अबरार नगर, खुर्रम नगर, रहीम नगर, इंद्रप्रस्थ कॉलोनी आदि बस्तियों से भी लाखों लोगों को बेदखल करने और हज़ारों घरों पर बुलडोज़र चलाने की तैयारी कर ली गयी थी। इन बस्तियों के हज़ारों घरों पर लखनऊ विकास प्राधिकरण के कर्मचारियों ने लाल निशान लगाने शुरू कर दिये थे।

लेकिन इस बार सरकार को भारी विरोध का सामना करना पड़ा। शहर के अनेक जनसंगठनों और राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों ने मिलकर लखनऊ बचाओ मोर्चा का गठन किया है जिसकी ओर से प्रभावित बस्तियों में विरोध सभाएँ की गयीं जिनमें बड़ी संख्या में लोग शामिल हुए। अकबरनगर को पूरी तरह ज़मींदोज़ किये जाने का हश्र देखकर लोगों में डर और ग़ुस्से का माहौल था। ये सभी बस्तियाँ कई दशकों से यहाँ बसी हुई हैं और इनके निवासियों के पास ज़मीन की मिल्कियत, मकान की रजिस्ट्री समेत सारे काग़ज़ात भी हैं। दशकों से ये लोग बिजली-पानी का शुल्क और तमाम सरकारी टैक्स भी भर रहे हैं।

अकबरनगर के बाशिन्दे भी यह सारे काम कर रहे थे फिर भी सुप्रीम कोर्ट तक ने उनकी बात नहीं सुनी और सरकारी बुलडोज़रों ने पूरी बस्ती तहस-नहस कर डाली। लेकिन इस बार सरकार के पीछे हटने के पीछे व्यापक विरोध के साथ ही दो ख़ास बातें हैं। पहली बात तो यह कि इन कालोनियों में बसी आबादी का एक बड़ा हिस्सा हिन्दू आबादी का है जिसकी नाराज़गी योगी सरकार अभी मोल नहीं लेना चाहती। कुछ ही दिनों में राज्य में 10 विधानसभा क्षेत्रों में उपचुनाव होने वाले हैं। लोकसभा चुनाव में झटका खा चुकी योगी सरकार अपने बचे कार्यकाल में अपने हिन्दू वोटबैंक को नाराज़ करने से भी बचना चाहती है। कुछ भाजपा समर्थक हिन्दुओं के वीडियो भी वायरल हुए जिनमें यह कहा जा रहा था कि हमने तो योगी सरकार बनने पर पटाखे फोड़े थे फिर हमारे ही घर क्यों तोड़े जा रहे हैं!

कड़वी मगर सच बात यही है कि कुछ ही दिन पहले बड़ी संख्या में हिन्दू अकबरनगर में बुलडोज़र चलने पर ख़ुश हो रहे थे क्योंकि वहाँ बहुसंख्यक आबादी मुसलमानों की थी। इनमें उन कालोनियों के लोग भी थे जिनके घरों पर अब सरकारी तलवार लटक रही है। देशभर में और ख़ासकर उत्तर प्रदेश में पिछले 10 वर्षों के दौरान जिस तरह से नफ़रत फैलायी गयी है, यह उसीका नतीजा है। लेकिन तमाम नफ़रती चिन्टुओं के लिए यह एक सबक भी है! राहत इन्दौरी के ये शब्द एक बार सही साबित हो रहे हैं कि "लगेगी आग तो आयेंगे घर कई ज़द में, इस गली में सिर्फ़ हमारा मकान थोड़ी है।"

सरकार पर बने दबाव में एक और बड़ा फ़ैक्टर यह भी था कि जहाँ अकबरनगर में ज़्यादा आबादी मेहनत-मशक्कत करने वाले ग़रीब लोगों की थी, वहीं इन कालोनियों में एक अच्छी-ख़ासी संख्या खाते-पीते और पैसेवाले मध्यवर्गीय लोगों की है जिनके विरोध को नज़रअन्दाज़ करना सरकार के लिए थोड़ा मुश्किल होता। इसका असर तो मीडिया में आने वाली ख़बरों में भी साफ़ देखा जा सकता था। अकबरनगर को उजाड़े जाते समय लगभग सभी बड़े अख़बार मानो ख़ुशी से चिल्ला रहे थे और सरकारी लाइन का ही ढोल पीट रहे थे, लेकिन पंतनगर, अबरार नगर, खुर्रम नगर, रहीम नगर, इंद्रप्रस्थ कॉलोनी आदि पर ख़तरा आते ही उनके सुर बदल गये थे। अचानक उनमें उजाड़े गये लोगों के प्रति हमदर्दी हिलोर मारने लगी थी और सरकार से भी सवाल पूछे जाने लगे थे।

ख़ैर, भारी विरोध के बाद सरकार ने न सिर्फ़ बेदखली के आदेश को अभी वापस ले लिया है बल्कि लिखित रूप में यह स्वीकार भी किया है कि सिर्फ़ 35 मीटर रिवर बेड में ही कुकरैल रिवर फ्रण्ट का निर्माण किया जाना है और फ्लड प्लेन एरिया जो 50 मीटर है, उसे ख़ाली कराने की कोई योजना नहीं है। ऐसे में यह सवाल उठता है कि तब अकबरनगर पर बुलडोज़र क्यों चलाये गये। जब सरकार और प्रशासन यह स्वीकार कर चुका है तब प्रशासन ने अकबरनगर में नदी से 500 मीटर दूर तक के क्षेत्र को तहस-नहस क्यों कर डाला?

अकबरनगर के 2000 से ज़्यादा परिवार अपने मकान और रोज़ी-रोटी से वंचित हो गये। सैकड़ों लोग अब भी आवास पाने के लिए दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं और जिन लोगों को 15-16 किलोमीटर दूर बियाबान में बने बसंत कुंज में छोटे-छोटे घटिया मकान दिये भी गये हैं, उनसे उसके 5-5 लाख रुपये माँगे जा रहे हैं। उस जगह पर तो स्कूल और सरकारी अस्पताल जैसी बुनियादी सुविधाएँ भी आसपास कहीं नहीं हैं।

इसीलिए अब सरकार से माँग की गयी है कि उसे तत्काल प्रभाव से अकबरनगर पर बुलडोज़र चलाने वाले अधिकारियों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई करनी चाहिए, उजाड़े गए परिवारों को मुआवज़े के साथ अकबरनगर में फिर से बसाना चाहिए और लोगों के लिए रोज़गार व बुनियादी नागरिक सुविधाओं का इन्तज़ाम करना चाहिए। साथ ही, बसंत कुंज आवासीय योजना में जो घर दिये गये हैं, वहाँ रहने का चुनाव करने वालों को मकान मुफ़्त दिये चाहिए।

बिगुल मज़दूर दस्ता और नौजवान भारत सभा की एक टीम ने दो बार बसन्तकुंज में अकबरनगर से उजड़े लोगों से मुलाकात की। उनकी हालत देखकर सरकार के झूठ बिल्कुल बेनकाब हो गये। अचानक बुलडोज़र चलने से बहुत से परिवारों को अपना सामान भी निकालने का मौक़ा नहीं मिला। घर तोड़ने का मुआवज़ा देना तो दूर, उनके घरों के मलबे को भी बेचकर सरकार उनके ज़ख़्मों पर नमक छिड़कने का काम कर रही है। रोज़ी-रोटी से वंचित हो गये लोगों से उन्हें दिये गये फ्लैटों की कीमत माँगी जा रही है। जो लोग इस चिन्ता में जी रहे हैं कि वे पेट कैसे भरेंगे और बच्चों को कैसे पढ़ाएँगे, उन पर यह चिन्ता भी थोप दी गयी है कि वे घर की किस्त के हज़ारों रुपये कैसे भरेंगे।

रिज़वान अकबरनगर में भाड़े पर टेंपो चलाते थे। अब नयी जगह से अकबरनगर की दूरी 15 किलोमीटर है, यहाँ उन्हें पूरा काम नहीं मिलता, कमाई घटकर आधी रह गयी है। उनके तीन बच्चे अकबरनगर के पास रजत इंटर कॉलेज में पढ़ने जाते थे, अब उनकी पढ़ाई बन्द है क्योंकि आसपास कोई अच्छा स्कूल नहीं है, जो है वे बहुत महँगे हैं। रुख़साना घरों में झाड़ू-पोछा करती हैं। अब उन्हें बसन्तकुंज से अकबरनगर आने-जाने में दो-ढाई घण्टे और लगभग 100 रुपये रोज़ ख़र्च करने पड़ते हैं। ऐसी और भी कई औरतें हमें मिलीं जो वहाँ आसपास काम करती थीं। अब वे या तो घर बैठी हैं या फिर ख़ासा समय और पैसे ख़र्च करके काम के लिए जाती हैं। दिहाड़ी पर काम करने वाले अनीस ने बताया कि उन्हें रोज़ 400-450 की दिहाड़ी मिलती है लेकिन अब अक्सर काम नहीं मिल पाता। आने-जाने में समय और पैसे अलग ख़र्च होते हैं।

पेण्टिंग का काम करने वाले अजय के दोनों बच्चों की पढ़ाई भी छूट गयी है। मुस्कान को इस बार बारहवीं का इम्तिहान देना है। लेकिन यहाँ से उसके कॉलेज जाने के लिए बस की कोई सेवा नहीं है। ईरिक्शा से जाने के लिए हर महीने 1500 रुपये चाहिए जो अब उसके माँ-बाप के लिए दे पाना बहुत मुश्किल है। विस्थापित लोगों को बसन्तकुंज में सस्ता राशन भी नहीं मिल रहा है क्योंकि यहाँ न तो कोई कोटेदार है और न ही सरकार ने कोई व्यवस्था की है। मजीद ने अपना घर दिखाया जिसकी छत अभी से टपक रही है।

ऐसे में अकबरनगर के लोगों के बीच भयंकर ग़ुस्से और हताशा को समझा जा सकता है। ख़ासकर अब, जब सरकार कह रही है कि सिर्फ़ 35 मीटर रिवर बेड में ही कुकरैल रिवर फ्रण्ट का निर्माण किया जाना है। एक निवासी ने बिल्कुल सही कहा कि अगर हमारे घरों पर बुलडोज़र चलते समय शहर के लोगों ने हमारा साथ दिया होता तो दूसरों के घरों को तोड़े जाने की नौबत ही नहीं आती।

इसी बात को खुर्रम नगर में आयोजित एक जनसभा में जागरूक नागरिक मंच की ओर से साथी रामबाबू ने कहा कि अकबरनगर को नेस्तनाबूद करने का कोई बड़ा विरोध संगठित नहीं हो सका इसलिए यह तानाशाह सरकार और भी वहशी तरीक़े से लाखों लोगों की रिहाइश और आजीविका पर हमला करने की तैयारी करने लगी। अगर हम लोग संगठित होकर पूरी ताक़त से इसके विरुद्ध नहीं लड़े तो हम लखनऊ शहर को अपनी आँखों के सामने बरबाद होते हुए देखेंगे। कोई भी शहर इमारतों और पार्कों से नहीं, उसे बसाने वाले मेहनतकश लोगों से बनता है।

रामबाबू ने कहा कि योगी सरकार जो नजूल संपत्ति अधिग्रहण अध्यादेश लेकर आयी है उसका असल मकसद है दशकों से बसी हुई लखनऊ की अनेक बस्तियों को ख़ाली करके बुलडोजरों से नेस्तनाबूद कर देना ताकि अरबों-खरबों की ज़मीनें भाजपा और संघ से जुड़ी रियल एस्टेट माफ़िया कम्पनियों को सौंपी जा सकें।

उल्लेखनीय है कुकरैल नाले के किनारे रिवर फ्रंट बनाने का 6000 करोड़ का ठेका एक गुजराती कम्पनी को देने की बात सामने आयी है। पीसीपी प्रोजेक्ट लिमिटेड नाम की इसी गुजराती कम्पनी ने अहमदाबाद में साबरमती रिवर फ्रंट बनाया था।

योगी सरकार मार्च में नजूल सम्पत्ति (लोक प्रयोजनार्थ प्रबंध और उपयोग) अध्यादेश 2024 लायी है जिसने पूरे प्रदेश में नज़ूल की ज़मीनों पर बसे हुए लोगों को उजाड़ने का रास्ता खोल दिया है। अंग्रेज़ों के जाने के बाद विभिन्न शहरों में जो ज़मीनें बिना किसी मालिकाना अधिकार के पड़ी रहीं वे नज़ूल की ज़मीनें थीं और बहुत से लोग लम्बे समय से इन ज़मीनों पर घर या दुकान आदि बनाकर रह रहे हैं और रोज़ी-रोटी कमा रहे हैं। सरकारें इन लोगों को साल-दर-साल हर तरह की सुविधाएँ देती रही हैं और उनसे तमाम शुल्क-टैक्स आदि वसूलती रही हैं। लेकिन अब अचानक यह अध्यादेश लाकर लाखों लोगों को उजाड़ने की कार्रवाई कॉरपोरेट घरानों और बिल्डरों को फ़ायदा पहुँचाने के लिए की जा रही है।

दरअसल यह लड़ाई सिर्फ़ उनकी नहीं है जिनके घरों पर बुलडोज़र चलने वाले हैं बल्कि यह नागरिक अधिकारों की साझा लड़ाई है और लखनऊ के तमाम नागरिकों को इसमें साथ देना चाहिए वरना कल किसी और रास्ते से दमन-उत्पीड़न का डण्डा उनके सिरों पर भी बरस सकता है। हमें अलग-अलग करके ही यह सत्ता अपना दमन चलाने में कामयाब हो पा रही है। जब दूसरों के घरों पर बुलडोज़र चल रहे थे तब बहुत से लोग ख़ुश हो रहे थे लेकिन अब वही बुलडोज़र उनके घरों की ओर मुड़ने वाले हैं। इस सच्चाई को हमें समझना होगा।

पुणे पोर्श–वरली बीएमडब्लू घटना

नशे में मदहोश अमीरजादों की चमचमाती गाड़ियों के चक्कों से पिसकर ख़ून से लथपथ होती आम ज़िन्दगी

● अविनाश

डेढ़ महीने के समय में दो घटनाएँ घटी, जिसमें नशे में मदहोश अमीरजादों की चमचमाती गाड़ी के चक्कों के नीचे मासूम ज़िन्दगी को कुचल दिया गया। पहली घटना पुणे के कल्याणीनगर इलाके में हुई। जिसमें एक तेज़ रफ़्तार पोर्श कार ने बाइक पर सवार दो लोगों को टक्कर मारी। इस हादसे में दोनों की मौके पर ही मौत हो गई। वही दूसरी घटना मुम्बई के वरली इलाके में हुई, जिसमें एक बीएमडब्ल्यू कार ने स्कूटर सवार पति-पत्नी को टक्कर मार दी, जिसमें महिला की मौके पर ही मौत हो गई। इन दोनों घटनाओं को थोड़ा और विस्तार से जानते है।

पुणे में पोर्श कार से हुई दुर्घटना

19 मई को, 12वीं पास करने की ख़ुशी में 17 साल के नौजवान ने दोस्तों के साथ पब में 48, 000 रुपये खर्च किये, शराब पिया व उसके बाद अपने अमीर बाप की आलीशान पोर्श कार को शराब के नशे में तेज़ रफ़्तार से चलाते हुए एक बाइक को टक्कर मार दी, जिससे दो युवा आईटी पेशेवर अनीश अवधिया और अश्विनी कोष्टा की मौत हो गयी। इसके बाद व्यवस्थित तरीके से इस पूरी घटना को ढँकने व गुनाहगार को बचाने की कोशिश की गयी।

वैसे तो महाराष्ट्र में शराब पीने की क़ानूनी उम्र 25 वर्ष है, लेकिन अमीरों के लिए यह नियम कहाँ लागू होते हैं। सबसे पहले इस घटना के बाद पुलिस ने इस अमीरजादे की ख़ूब आवभगत की, उसे पिज़्ज़ा खिलाया ताकि नशा उतर जाए और ब्लड रिपोर्ट में शराब पीने कि बात न आए। इसके अलावा ब्लड टेस्ट आठ घण्टे से अधिक की देरी से कराया गया। मगर इससे भी सन्तुष्ट नहीं हुए। पिता ने कथित तौर पर डॉक्टरों को 3 घण्टे में 14 कॉल किए, जिसके बाद डॉ. अजय टावरे और डॉ. श्रीहरि हालनोर ने कथित तौर पर आरोपी के नमूने को उसकी माँ के नमूने से बदल दिया। बाद में डॉक्टरों पर भारतीय दण्ड संहिता की विभिन्न धाराओं के तहत आरोप लगाए गए जिनमें 120बी, 467, 201, 212 और 213 जैसी धाराएँ शामिल हैं। डॉ. अजय टावरे की बहाली की सिफारिश एनसीपी (अजीत पवार) विधायक सुनील टिंगरे ने की थी। सुनील टिंगरे वही विधायक है, जो सुबह 3: 30 से 6: 00 बजे के बीच पुलिस स्टेशन में मौजूद थे और कह रहे थे उन्होंने केस में किसी भी तरह का दबाव नहीं दिया था। इसके अलावा पिता, माता और दादा पर सबूतों से छेड़छाड़ का मामला शामिल हैं। इन्होंने ड्राइवर को बन्दी बना कर रखा और दुर्घटना का दोष अपने ऊपर लेने के लिए मजबूर किया था। इसके लिए बाप और दादा को गिरफ्तार भी किया गया। उसके बाद भी सबसे हास्यास्पद तो किशोर न्याय बोर्ड (Juvenile Justice Board) का फैसला था, जिसने 300 शब्दों का निबन्ध लिखने और पन्द्रह दिन तक यातायात पुलिस की सहायता करने जैसी बेतुकी शर्तों पर दुर्घटना के 15 घण्टे के भीतर जमानत भी दे दी थी। 2 जीते-जागते इन्सानों को कुचलकर मार डालने की सज़ा 300 शब्दों का निबन्ध हो सकता है, इससे ज्यादा भद्दा मजाक देखने को नहीं मिल सकता। पुणे में और पूरे देश भर में हुए प्रदर्शन के दबाव में पुलिस ने फिर आरोपी, उसके बाप और दादा को पकड़ लिया था। मगर अब जब मामला थोडा ठण्डा पड़ गया है, तब ड्राइवर के कथित अपहरण और गलत तरीके से बन्धक बनाने से सम्बन्धित मामले में पुणे की एक अदालत ने पोर्श कार दुर्घटना में शामिल आरोपी के पिता और दादा को जमानत दे दी है। साथ ही बॉम्बे हाई कोर्ट ने पुणे कार दुर्घटना मामले में नाबालिग आरोपी को भी जमानत दे दी है। इस पूरी घटना में साफ़ तौर पर देखा जा सकता है कि किस तरह इस पूरी घटना को रफा-दफा करने के लिए पुलिस, नेता, डॉक्टर, न्यायपलिका का गठजोड़ काम कर रहा था और पूरा का पूरा सरकारी तन्त्र किस तरह हरकत में आया और उसकी पक्षधरता किस तरफ़ थी। इस घटना ने बिना किसी पर्देदारी के साफ़ कर दिया कि मौजूदा व्यवस्था किस वर्ग की है और इसमें आम लोगों की क्या जगह है।

वरली में बीएमडब्ल्यू से हुई दुर्घटना

पुणे पोर्श दुर्घटना की ही तरह चौंकाने वाली समानता में 7 जुलाई को शिवसेना (शिंदे गुट) के नेता राजेश शाह के बेटे मिहिर शाह, जिसकी उम्र 23 साल है, के द्वारा चलाई जा रही एक तेज़ रफ्तार बीएमडब्ल्यू ने वरली में एक दम्पत्ति को टक्कर मारी, जिसके परिणामस्वरूप एक महिला (कवेरी) की मौके पर मौत हो गई। घटना से पहले मिहिर रविवार की सुबह तक जुहू के एक बार में चार दोस्तों के साथ पार्टी कर रहा था, जिसका बिल 18,000 रुपये था। वहीं सुबह 5: 30 बजे, कवेरी नाखवा और उनके पति प्रदीप नाखवा, वरली के कोलीवाडा क्षेत्र से ससून डॉक में मछली लाने के लिए यात्रा कर रहे थे। पुलिस ने कहा कि पूरा हादसा सीसीटीवी में कैद हो गया है, जिसके सीसीटीवी फुटेज में कावेरी नखवा, जिनकी आयु 45 वर्ष थी, को कार द्वारा 1.5 किलोमीटर तक घसीटा जाता हुआ देखा जा सकता है। पुलिस ने पीटीआई के हवाले से कहा, "वरली से घसीटे जाने के बाद, मिहिर और ड्राइवर बिदावत ने बान्द्रा वर्ली-सी लिंक से ठीक पहले कार रोकी और महिला को निकाला जो वाहन के टायर में फँस गई थी। इसके बाद ड्राइवर बिदावत ने ड्राइवर की सीट ले ली और कार को पीछे करते हुए पीड़िता के ऊपर चढ़ा दिया, इसके बाद वे भाग गए।" कावेरी के पति प्रदीप नखवा ने कहा, "अगर मैं गरीब नहीं होता तो वह (ड्राइवर) मिल जाता। वह लोग अमीर हैं इसलिए उसे छुपा दिया। हमारा जो सहारा था वही चला गया।" आगे प्रदीप नाखवा ने कहा, "मेरे पास दो बच्चे हैं। हमने सब कुछ खो दिया। मेरी पत्नी चली गई, लेकिन दोषी को दुर्घटना के लिए कठोर सजा मिलनी चाहिए।"

इस घटना में गाड़ी का ड्राइवर 23 वर्षीय मिहिर शाह था, जो शिव सेना (एकनाथ शिंदे) के नेता राजेश शाह के बेटा हैं। राजेश शाह पर कथित तौर पर गलत सूचना देने और सबूत नष्ट करने का मामला दर्ज किया गया है। पुलिस ने मिहिर के पिता, राजेश शाह को गिरफ्तार भी किया था। हालाँकि, गिरफ्तारी के एक दिन बाद, मुम्बई कोर्ट ने शिंदे सेना के नेता को 15,000 रुपये की जमानत पर रिहा कर दिया। आरोपी मिहिर शाह को भी 72 घण्टे के बाद गिरफ्तार कर लिया गया है। मगर केस कमज़ोर करने के लिए मर्डर के चार्ज नहीं लगाये गए है। ऐसी क्रूरतम तरीके से मारना, फिर घसीटना और उसके बाद चक्के से निकाल कर फेंक देना और वापस गाड़ी मृत शरीर पर चलाना। ऐसी वीभत्सतम घटना के विवरण भर से रोंगटे खड़े हो जाते है। क्या सच में कोई ऐसा काम कर सकता है? लेकिन जब आप इस देश के धनपशुओं पर एक निगाह डालते हैं, तो आप समझ जाते हैं कि उनसे किसी प्रकार की मानवीयता या संवेदनशीलता की उम्मीद करना बेकार है। धनबल के कारण उनमें अधिकार-सम्पन्नता का ऐसा बोध है कि वे अन्य आम लोगों को इन्सान भी नहीं समझते हैं। प्रदीप नाखवा का कहना था कि अगर गाड़ी रोक दी जाती तो शायद उनकी पत्नी बच सकती थी।

पहले भी रौंदी जाती रही है आम लोगों की ज़िन्दगी अमीरज़ादों की गाड़ियों के चक्कों तले

महाराष्ट्र में शिंदे सरकार इस पूरी घटना में इन अमीरजादों से ध्यान हटाने के लिए और जनता में बढ़ रहे असन्तोष को ठण्डा करने के लिए, सारा दोष पब पर डालने का काम कर रही है और 'बुलडोज़र न्याय' के द्वारा एक पब को तोड़ा भी जा चुका है। मगर जैसे यह मामला थोड़ा पुराना होगा, इसे भी ठण्डे बस्ते में डाल दिया जाएगा। पिछले दशक में, अमीरजादों द्वारा इसी तरह अपने गाड़ियों के नीचे रौंदने के कई मामले देखे गए हैं। मगर उन मामलों में क्या हुआ ?

महाराष्ट्र में इन दोनों घटनाओं के बीच ही 29 मई को, बृज भूषण सिंह - जो देश की शीर्ष महिला पहलवानों द्वारा यौन उत्पीड़न के आरोपों के केन्द्र में हैं, के बेटे, करण भूषण सिंह के काफिले के वाहन ने गोंडा में दो लोगों को कुचल दिया और उनकी हत्या कर दी। एक प्राथमिकी दर्ज की गई, लेकिन उसमें किसी का नाम नहीं लिखा गया।

राजेश रेड्डी, रियल एस्टेट एजेण्ट और कन्नड़ फिल्म निर्माता लोकेश रेड्डी के बेटे ने कथित तौर पर एक व्यक्ति की हत्या कर दी और दो अन्य को अपंग बना दिया, जब उनकी ऑडी Q7 मेयो हॉल के पास एक ऑटो से टकरा गई। जून 2013 में हुई यह दुर्घटना कथित तौर पर नशे में गाड़ी चलाने के कारण हुई थी। रिपोर्ट्स में कहा गया है कि कार में शराब की बोतलें पाई गई थीं और उसका ड्राइवर उस समय 19 वर्ष का था। राजेश को दो साल बाद लापरवाही से गाड़ी चलाने की एक अन्य घटना में कब्बन पार्क पुलिस ने फिर से पकड़ा। आज इस केस को बन्द कर दिया गया है।

कथित रूप से नशे में धुत बार कृष्णप्पा ने तब सुर्खियाँ बटोरीं, जब उनकी लैण्ड रोवर ने फुटपाथ पर चल रहे लोगों को कुचल दिया, जब वह एक डिवाइडर से बचने के लिए मुड़े। कृष्णप्पा जुलाई 2013 में 56 वर्ष के थे, जब यह घटना घटी। इसमें चार लोगों की मौत हो गई और छह घायल हो गए। उन पर पुलिसकर्मियों पर हमला करने का भी आरोप था। उन्हें आठ साल बाद नवम्बर 2021 में बरी कर दिया गया।

मर चुके उद्योगपति और सांसद आदिकेसावुलु के पोते गीता विष्णु ने कथित तौर पर सितम्बर 2017 में अपनी लग्जरी एसयूवी को मारुति ओमनी से टकरा दिया था। साउथ एण्ड सर्कल के पास हुई इस दुर्घटना में छह लोग घायल हो गए थे। विष्णु कथित तौर पर नशे में था और पुलिस ने कहा कि उन्होंने कार से गांजा बरामद किया है। विष्णु पुलिस हिरासत में रहते हुए "अस्पताल से भाग गया" और तीन दिन बाद आत्मसमर्पण कर दिया। जुलाई 2019 में उसे बरी कर दिया गया।

सलमान खान : शराब के नशे में एक सफेद टोयोटा लैण्ड क्रूजर से हिल रोड, बान्द्रा के अमेरिकन एक्सप्रेस बेकरी में टक्कर मारी थी, जिसमें एक व्यक्ति की मौके पर मौत हो गई और चार लोग घायल हुए थे। इसके लिए भी सलमान खान को जमानत मिल गयी थी और पाँच साल की सजा निलम्बित कर दी गयी थी।

मुहम्मद निशाम: बीड़ी किंग ने केरल में एक व्यक्ति को अपनी हमर कार से टक्कर मार दी। उसने आरोप लगाया कि एक आवासीय टाउनशिप के गेट को खोलने में देरी हुई, जहाँ उसका एक अपार्टमेण्ट है। यानि अमीरों कि खिदमत में आप समय पर न आए तो आपको उनके गाड़ियों के चक्कों के नीचे कुचल दिया जाएगा।

इन घटनाओं से पता चलता है कि कैसे दौलत के नशे में डूबे यह अमीरजादे अपने पोर्शे, बीएमडब्ल्यू और लक्ज़री गाड़ियों में बैठने के बाद, सड़क पर चलने वाले इन्सान को कीड़े-मकोड़े से ज़्यादा कुछ नहीं समझते और मानते हैं कि वे उन्हें कीड़ों-मकोड़ों के ही समान कुचल सकते हैं। उन्हें पता होता है कि इसके बाद यह बेहद आसानी से छूट भी जाएँगे। भला ऐसा हो भी क्यूँ नहीं? पैसे और बहुबल के दम पर पुलिस–न्यायपालिका–नेता का गठजोड़ जो इनके पीछे खड़ा रहता है! इसके तहत 'खाओ-पियो-ऐश करो' की संस्कृति व दौलत के नशे में, घमण्ड से चूर यह धन्नासेठ वर्ग सबसे क्रूरतम घटनाओं को अंजाम देता रहता है। पूरी राज्य व्यवस्था इन अमीरजादों के हाथों में कठपुतली की तरह काम करती है। इनको सजा कहाँ मिलेगी? जेलों में सड़ती है बस आम गरीब जनता।

आज भी भारतीय जेलों के आंकड़े बताते हैं कि भारत में 68 प्रतिशत कैदी ऐसे हैं जिन्हें किसी भी अदालत ने किसी अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया है। उनमें से कई को अपने मामलों की सुनवाई शुरू करने से पहले ट्रायल कोर्ट में सालों तक इंतज़ार करना पड़ता है। बिना अपराध साबित हुए सालों तक जेल में बंद करके रखा जाता है, सड़ने के लिए छोड़ दिया जाता है। अगर भूल-चूक से कोई अमीर जेल चला भी जाए तो उनके लिए वहाँ पर फाइव स्टार होटल जैसी सेवा की व्यवस्था मौजूद होती है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) की नवीनतम रिपोर्टों के विश्लेषण से पता चलता है कि भारत की जेलों में ज़्यादातर युवा पुरुष और महिलाएँ ऐसे हैं जो अशिक्षित या अर्ध-शिक्षित हैं और समाज के सामाजिक-आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों से आते हैं। 65 प्रतिशत से ज़्यादा कैदी एससी, एसटी और ओबीसी श्रेणियों से आते हैं। उनमें से ज़्यादातर इतने गरीब हैं कि वे ज़मानत राशी भी नहीं चुका पाते, जो जेलों में सबसे बुरी परिस्थितियों में रहनो को मज़बूर होते है। क्या यही इंसाफ है? अमीरों के लिए सब कुछ और गरीबों के लिए नरक से भी बुरी व्यवस्था। आज हमें इस पूंजीवादी व्यवस्था में मौजूद, अदालतों, जेल, अफसर, दफ्तर और इस पूरे ढांचे की हक़ीकत व उसके सच्चे चरित्र को पहचानना होगा और इस अन्यायपूर्ण ग़रीब विरोधी ढोंगी व्यवस्था को बदलने के काम में जुट जाना होगा। वर्ना फिर कोई नशे में मदहोश अमीरजादा अपनी गाड़ी की तेज रफ़्तार से किसी आम इंसान को कुचल कर आगे बढ़ जायेगा और यह सिलसिला जारी ही रहेगा। अपने इंसान होने का सबूत देने के लिए लड़ना होता है, वरना चुप्पी के साथ कमर झुका कर कोड़े खाने को तैयार लोग वाकई कीड़े-मकोड़ों में तब्दील हो जाते हैं।

मोदी सरकार की फ़ासीवादी श्रम संहिताओं के विरुद्ध तत्काल लम्बे संघर्ष की तैयारी करनी होगी

(पेज 1 से आगे)

लिए मुश्किल हो जायेगा।

एक वजह है जिसके कारण केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें जुमलेबाज़ी व ज़ुबानी जमाख़र्च की नौटंकी से आगे नहीं जा रही हैं। कुछ मिसालों से इस वजह को समझ सकते हैं। केरल में वाम मोर्चे की सरकार है। वहाँ के मुख्यमन्त्री पिनरायी विजयन केरल में पूँजीपतियों को निवेश के लिए हर सम्भव मौका और रियायत देने की पेशकश कर रहे हैं। केरल के बड़े पूँजीपतियों से उनके बड़े सौहार्द्रपूर्ण और सहयोगपूर्ण रिश्ते हैं, मसलन, लूलू ग्रुप इण्टरनेशनल के मालिक एम. ए. युसुफ़ अली से। वहाँ का पूँजीपति वर्ग भी चाहता है कि नयी श्रम संहिताएँ लागू हो जाएँ जिससे कि मज़दूरों के काम के घण्टे क़ानूनी तौर पर 8 घण्टे से ज़्यादा किये जा सकें, फ्लोर लेवल मज़दूरी के नाम पर उनसे न्यूनतम मज़दूरी का हक़ ही छीन लिया जाये, किशोर व बाल श्रम के शोषण की किसी न किसी पर्दे के पीछे से इजाज़त दे दी जाय, पूँजीपतियों के लिए मज़दूरों को 'हायर एण्ड फ़ायर' की नीतियों के आधार पर फिक्स्ड टर्म कॉण्ट्रैक्ट के आधार पर रखना सम्भव हो जाये, इत्यादि। तमिलनाडु की डीएमके सरकार ने तो मज़दूरों के कार्यदिवस को 12 घण्टे तक बढ़ाने की पहले ही कोशिश कर दी थी। कर्नाटक में कांग्रेस की सरकार ने प्लेटफॉर्म व गिग अर्थव्यवस्था के ऊपर एक ख़तरनाक क़ानून की घोषणा की है, जो *स्विगी, ओला, ऊबर, इंस्टामार्ट* आदि के मज़दूरों को मज़दूर नहीं बल्कि "स्वरोज़गारप्राप्त उद्यमी" बताता है और इन अरबपति कम्पनियों को नियोक्ता की सारी ज़िम्मेदारियों से मुक्त कर देता है और औद्योगिक सम्बन्धों के दायरे से इन अतिशोषित मज़दूरों को बाहर कर देता है। चन्द्रबाबू नायडू तो हमेशा से नवउदारवादी नीतियों के ज़रिये श्रम अधिकारों को समाप्त करने वाली नीतियों के हामी रहे हैं। नीतीश से लेकर पासवान तक की राजग गठबन्धन की पार्टियाँ इन श्रम संहिताओं के मसले पर चुप्पी साधे हुए हैं। ये उनके लिए मसला ही नहीं है। उनकी राजनीति जातिवादी व क्षेत्रवादी अस्मितावाद का इस्तेमाल कर अपने-अपने राज्य की क्षेत्रीय बुर्जुआज़ी के लिए मज़दूर वर्ग की लूट के आधार पर निचोड़े गये बेशी मूल्य में हिस्सा बढ़ाने की माँगों से आगे नहीं जाती। ये नेता इन माँगों को "प्रदेश की जनता की माँग" बताते हैं, जबकि ये इन प्रदेशों के सरमायेदारों, भूस्वामियों, बड़े व्यापारियों आदि की, यानी पूँजीपति वर्ग की माँगें हैं।

मोदी सरकार ने अपने पिछले कार्यकाल में, 2019 और सितम्बर 2020 में, इन क़ानूनों को पारित करवाया था, जब जनता कोरोना की मार और उसके बाद मोदी सरकार द्वारा अनियोजित रूप से थोपे गये लॉकडाउन की मार झेल रही थी। इन चार लेबर कोड्स के लागू होने के साथ मज़दूर वर्ग के कई ऐसे अधिकारों को छीन लिया जायेगा, जिन्हें दशकों के संघर्ष के बाद उसने हासिल किया था। ये चार लेबर कोड हैं औद्योगिक सम्बन्ध संहिता, सामाजिक सुरक्षा व पेशागत सुरक्षा संहिता, स्वास्थ्य व कार्यस्थिति संहिता और मज़दूरी संहिता (जिसे 2019 में ही पारित करवा लिया गया था)। मोदी सरकार का दावा थ कि 44 मौजूदा श्रम क़ानूनों के कारण एक जटिलता पैदा होती है, जिससे "धन्धा करने की आसानी" प्रभावित होती है और उसका दावा यह भी था कि मज़दूरों को भी इससे नुकसान होता है क्योंकि उन्हें "काम करने की आज़ादी" नहीं मिलती! इस बाद वाली बकवास को हर मज़दूर समझता है। ज़ाहिर है, इनका असल मक़सद है मुनाफ़े की गिरती औसत दर के संकट से पूँजीपति वर्ग को निजात दिलाना। वास्तव में, यही करने के लिए देश के अडानी, अम्बानी, टाटा, बिड़ला की जमात मोदी को सत्ता में लाने के लिए 2014 के पहले से ही चुकचुकायी हुई थी। 2024 के चुनावों में थोड़ा झटका खाने और नीतीश-नायडू की बैसाखी का सहारा लेने को मजबूर होने के बावजूद इस मज़दूर-मेहनतकश विरोधी एजेण्डा को लागू करने में मोदी सरकार को कोई ज़्यादा दिक्कत अपने गठबन्धन के पार्टनरों से नहीं होने वाली है, जिसके कारण हम ऊपर बता चुके हैं। मोदी सरकार अपने पूँजीपति आकाओं के लिए यह काम पूरा करने को इस कदर बेताब है कि 4 जून को 2024 के लोकसभा चुनावों के नतीजे आने के ठीक एक माह के भीतर ही नयी श्रम संहिताओं को लागू करने का उपक्रम शुरू कर दिया है। मोदी-शाह की चिन्ता यह भी है कि किसी अन्य अन्तरविरोध के कारण गठबन्धन सरकार के सिर पर पतन की तलवार मण्डराये, इससे पहले ही धन्नासेठों का यह काम कर दिया जाना चाहिए। अगर ऐसा न हो पाया तो पूँजीपति वर्ग से मिलने वाला भारी आर्थिक समर्थन भी उनके हाथ से जा सकता है।

पहली श्रम संहिता, यानी मज़दूरी संहिता 2019 में ही पारित करवा ली गयी थी। इसके अनुसार, मालिक को मज़दूर को न्यूनतम मज़दूरी देने से बचने के तमाम रास्ते दिये गये हैं। न्यूनतम मज़दूरी के स्थान पर फ्लोर लेवल मज़दूरी की अवधारणा पेश की गयी है जो कि न्यूनतम मज़दूरी से बेहद कम है। साथ ही, न्यूनतम मज़दूरी को लागू करने के सवाल को भी यह संहिता गोलमोल करती है और इस नियम को कमज़ोर बनाती है। यह 8 घण्टे से ज़्यादा काम करवाने के क़ानूनी रास्ते खोलती है और वह भी ओवरटाइम मज़दूरी के भुगतान के बिना।

इसी प्रकार औद्योगिक सम्बन्ध संहिता को इसलिए तैयार किया गया है कि मालिकों को बिना किसी नोटिस या जवाबदेही के मज़दूरों को काम से निकालने का रास्ता साफ़ हो जाये। यानी रोज़गार की सुरक्षा के प्रति मालिक की सारी क़ानूनी ज़िम्मेदारी को ख़त्म करने का रास्ता खोल दिया गया है; जब चाहे मज़दूरों को काम पर रखो और जब चाहे उन्हें निकाल बाहर करो! पूँजीपति वर्ग बहुत समय से यह "आज़ादी" माँग रहा था। यह संहिता लागू होने का मतलब यह होगा कि किसी भी मज़दूर के लिए स्थायी नौकरी का सपना देखना भी असम्भव हो जायेगा। इसके अलावा, यह संहिता यूनियन बनाने के अधिकार को और यूनियनों के द्वारा मालिकों से सामूहिक मोलभाव कर अपने अधिकारों को हासिल करने के काम को भी व्यावहारिक तौर पर असम्भव बना देता है। मज़दूरों के अधिकारों का हनन होने पर मज़दूर द्वारा नियमत: उठाये जा सकने वाले कदमों के प्रावधानों को भी इसके तहत बेहद कमज़ोर बना दिया गया है। लेबर कोर्ट समाप्त हो जायेंगे और उसकी जगह औद्योगिक ट्राइब्यूनल होंगे और उनके निर्णयों को पलट देने या न मानने की अच्छी-ख़ासी शक्ति सरकार को दी गयी है। औद्योगिक सम्बन्ध संहिता मालिक और मज़दूर के बीच रोज़गार के क़रार सम्बन्धी नियमों, यूनियन बनाने सम्बन्धी नियमों व विवादों के निपटारे सम्बन्धी नियमों को इस रूप में बदल रहा है कि भारत के मरे-गिरे श्रम क़ानूनों में जो थोड़ा-बहुत मज़दूरों को हासिल होता था, अब वह भी हासिल नहीं रह जायेगा। संकट से बिलबिलाया पूँजीपति वर्ग अपने मुनाफ़े के बुलडोज़र के रास्ते में कोई छोटा-मोटा स्पीडब्रेकर भी अब बर्दाश्त नहीं करना चाहता है।

इसी प्रकार सामाजिक सुरक्षा व पेशागत सुरक्षा संहिता मज़दूरों को मिलने वाले सभी सामाजिक सुरक्षा लाभों को केन्द्रीय व राज्य सरकारों की अधिसूचनाओं पर निर्भर बना देता है। मतलब कि ईएसआई, पीएफ़, ग्रैच्युटी, पेंशन, मातृत्व लाभ व अन्य सभी लाभ मज़दूरों को बाध्यताकारी तौर पर देना सरकार व मालिकों की ज़िम्मेदारी नहीं होगी, बल्कि यह केन्द्रीय सरकार व राज्य सरकारों द्वारा जारी किये जाने वाले नोटिफिकेशनों पर निर्भर करेगा। साथ ही, यह इन सामाजिक सुरक्षा के प्रावधानों के दायरे को भी बेहद सीमित कर दिया गया। इनके तहत अब अधिकांश मज़दूर क़ानूनी तौर पर आयेंगे ही नहीं। इसी प्रकार पेशागत सुरक्षा, स्वास्थ्य व कार्यस्थितियों सम्बन्धी संहिताओं ने जोखिम भरे कामों की परिभाषा को ही बदल डाला और 80 प्रतिशत मज़दूरों को इस क़ानून के लागू होने के दायरे से बाहर कर दिया है। ये संहिताएँ मालिकों को इस बात का मौका देती हैं कि वह अपने मज़दूरों को मानवीय कार्यस्थितियाँ मुहैया न कराये। महिला मज़दूरों को पालनाघर देने की बाध्यता से भी मालिकों को मुक्त कर दिया गया है। चारों नये लेबर कोड के विषय में विस्तार से जानने के लिए पाठक फरवरी 2021 के 'मज़दूर बिगुल' का सम्पादकीय (https://www.mazdoorbigul.net/archives/14249) पढ़ सकते हैं।

"अभी तक अगर कहीं पर अनौपचारिक व औपचारिक, संगठित व असंगठित दोनों ही प्रकार के मज़दूर, संगठित होते थे, तो वे लेबर कोर्ट का रुख़ करते थे और कुछ मसलों में आन्दोलन की शक्ति के आधार पर क़ानूनी लड़ाई जीत भी लेते थे। लेकिन अब वे क़ानून ही समाप्त हो जायेंगे और जो नयी श्रम संहिताएँ आ रही हैं उनमें वे अधिकार मज़दूरों को हासिल ही नहीं हैं, जो पहले औपचारिक तौर पर हासिल थे।"

कुल मिलाकर कहें, तो अगर ये श्रम संहिताएँ लागू होती हैं तो मज़दूर वर्ग को गुलामी जैसे हालात में काम करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। अभी भी 90 फ़ीसदी अनौपचारिक मज़दूरों के जीवन व काम के हालात नारकीय हैं। अभी भी मौजूद श्रम क़ानून लागू ही नहीं किये जाते, जिसके कारण इन मज़दूरों को जो मामूली क़ानूनी सुरक्षा मिल सकती थी, वह भी बिरले ही मिलती है। लेकिन अभी तक अगर कहीं पर अनौपचारिक व औपचारिक, संगठित व असंगठित दोनों ही प्रकार के मज़दूर, संगठित होते थे, तो वे लेबर कोर्ट का रुख़ करते थे और कुछ मसलों में आन्दोलन की शक्ति के आधार पर क़ानूनी लड़ाई जीत भी लेते थे। लेकिन अब वे क़ानून ही समाप्त हो जायेंगे और जो नयी श्रम संहिताएँ आ रही हैं उनमें वे अधिकार मज़दूरों को हासिल ही नहीं हैं, जो पहले औपचारिक तौर पर हासिल थे। इन चार श्रम संहिताओं का अर्थ है मालिकों और कारपोरेट घरानों, यानी बड़े पूँजीपति वर्ग, को जीवनयापन योग्य मज़दूरी, सामाजिक सुरक्षा और गरिमामय कार्यस्थितियाँ दिये बग़ैर ही उनका भयंकर शोषण करने की इजाज़त ओर मौक़ा देना। यह हमसे मानवीयता की बाक़ी शर्तों को भी छीन लेगा। यह हमें पाशविकता की ओर धकेल देगा। अगर हम इन श्रम संहिताओं के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए एकजुट नहीं होते, अगर हम अनिश्चितकालीन हड़ताल का रास्ता अपनाकर मोदी सरकार को इन श्रम संहिताओं को वापस लेने के लिए बाध्य करने के वास्ते एक लम्बे संघर्ष की आज ही शुरुआत नहीं करते हैं, तो कल बहुत देर हो जायेगी।

नकली कम्युनिस्ट पार्टियों और अन्य पूँजीवादी पार्टियों से जुड़ी ट्रेड यूनियनों से कोई उम्मीद करना बेकार है। *उनके पास तो यह मौक़ा और ताक़त दोनों ही थे कि वे आम अनिश्चितकालीन हड़ताल का आह्वान करते और मोदी सरकार को इन श्रम संहिताओं को वापस लेने के लिए मजबूर करते। अगर वे ऐसा करते, तो सभी वास्तव में क्रान्तिकारी यूनियनों को भी इसमें साथ देना चाहिए था।* ***लेकिन वे ऐसा नहीं कर रही हैं।*** *तो क्या बाक़ी मज़दूर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें और इन्तज़ार करें कि मालिकों की यह तानाशाही हम पर थोप दी जाये? नहीं। हमें अभी से संगठित होना चाहिए। ये सवाल हमें एक मौका दे रहे हैं कि हम अपनी स्वतन्त्र क्रान्तिकारी यूनियनें बनाएँ। जहाँ कहीं ऐसी यूनियनें हैं, उन्हें तत्काल इसके ख़िलाफ़ देशव्यापी अभियान शुरू करना चाहिए। लाखों-करोड़ों मज़दूरों के हस्ताक्षर करवाये जाने चाहिए। उन्हें पहले स्थानीय तौर पर गोलबन्द और संगठित कर जुलूस व प्रदर्शन आदि का आयोजन करना चाहिए और आपसी तालमेल कर इस अभियान के तहत देश की राजधानी में मज़दूर महाजुटान करना चाहिए। केवल इसके आधार पर ही मोदी सरकार को चेताया जा सकता है कि इन मज़दूर-विरोधी श्रम संहिताओं को थोपने की हिमाक़त न करे।*

रेल व्यवस्था का ग़रीब विरोधी चरित्र! लगातार बढ़ते ट्रेन हादसे! ज़िम्मेदार मोदी सरकार!!

(पेज 1 से आगे)

है। पश्चिम रेलवे के अहमदाबाद डिवीजन द्वारा मई 2023 में तैयार एक आधिकारिक नोट में कहा गया था कि लोको पायलट की कमी के कारण अप्रैल 2023 में 23.5 प्रतिशत लोको पायलट ने काम करने के अधिकतम समय 12 घण्टे से अधिक काम किया। इसी प्रकार, लगातार 6-6 दिन रात की ड्यूटी करवाये जाने के कारण भी रेल दुर्घटनाओं की संख्या बढ़ रही है। 2021-22 से 2022-23 के बीच नुकसानदेह रेल दुर्घटनाओं की संख्या में 37 प्रतिशत की भारी बढ़ोत्तरी हुई। कई बार ड्राइवरों को बिना शौचालय विराम के 10-10 घण्टे तक काम करना पड़ता है।

इसी प्रकार सिग्नल प्रणाली में लगे स्टाफ़ को भी या तो बढ़ाया ही नहीं गया या पर्याप्त रूप में नहीं बढ़ाया गया। नतीजतन, वहाँ भी काम के बोझ के कारण त्रुटियों और चूकों की सँभावना बढ़ जाती है। यही हाल ग्रुप सी व डी के रेलवे कर्मचारियों का भी है। 2015 से 2022 के बीच ग्रुप सी व डी के 72,000 पदों को रेलवे ने समाप्त कर दिया। एक लिखित जवाब में रेल मन्त्री ने अलग-अलग जोन में मौजूद भर्तियों के बारे में बताया कि, ग्रुप सी में कुल 2,48,895 पद खाली हैं और ग्रुप ए और बी में 2070 पद खाली पड़े हैं। वहीं पूरे देश में क़रीब 3,04,143 पद खाली हैं। एक ओर रेलवे स्टेशनों, ट्रैकों की संख्या बढ़ रही है, वहीं पदों को कम कर और ठेकाकरण कर निजी कम्पनियों को मुनाफ़ा कूटने की आज़ादी दी जा रही है और रेलवे कर्मचारियों पर बोझ को बढ़ाया जा रहा है। यह मोदी सरकार की नीतियों का ही नतीजा है। 2007-08 में रेलवे में 13,86,011 कर्मचारी थे। लेकिन आज यह संख्या 12.27 लाख हो चुकी है। यानी करीब 1,85,984 नौकरियों की कटौती।

आज दुर्घटनाओं में मृतकों की संख्या इतनी बड़ी होने के पीछे एक कारण यह भी है कि जनरल बोगियों में मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकशों की जनता को जानवरों और भेड़-बकरियों की तरह सफ़र करने पर मजबूर होना पड़ता है। आँकड़े बताते हैं कि 2005 में 23 प्रतिशत एसी कोच थे और 77 प्रतिशत स्लीपर कोच और 2023 में स्लीपर कोच 46 प्रतिशत ही रह गये और एसी कोच की संख्या में बढ़ोतरी हुई है। पहले सभी ट्रेनों में चार जनरल कोच हुआ करते थे, अब सिर्फ़ दो ही होते हैं। बता दें कि रोज़ाना 2 करोड़ 40 लाख लोग सफ़र करते हैं, जिसमें अधिकतम जनरल में ही यात्रा करते हैं। 2023 के आँकड़े बताते हैं कि अप्रैल से अक्टूबर के बीच कुल 390.2 करोड़ रेल यात्रियों में से 95.3 फीसदी ने जनरल और स्लीपर क्लास में यात्रा की है। सिर्फ़ 4.7 फीसदी यात्रियों ने एसी क्लास डिब्बों में सफ़र किया। क़ायदे से सरकार को रेलों और बोगियों की संख्या बढ़ानी चाहिए ताकि हर कोई मानवीय, गरिमामय और आरामदेह स्थितियों में सफ़र कर सके।

मोदी सरकार वन्दे भारत ट्रेन का खूब प्रचार करती है और इसे "नये भारत" की ट्रेन बताती है और कवच योजना का प्रचार करती है, इससे मध्यमवर्ग की एक आबादी को लग सकता है कि रेलवे तरक्की पर है। आइए इसकी भी सच्चाई जानते हैं। अगर कवच की बात करें तो अभी तो देश भर में सिर्फ़ 1,445 किलोमीटर में कवच लगाया गया है, जबकि रेलवे 69,000 किलोमीटर की कुल लम्बाई के मार्ग का प्रबन्धन करती है। दूसरी तरफ़ आम जनता वन्दे भारत में नहीं स्लीपर या जनरल डिब्बे में सफ़र करती है। वन्दे भारत की अगर बात करें तो इस ट्रेन में सफ़र करके भी अन्य ट्रेनों के मुक़ाबले औसतन 65 मिनट ही बचता है और इसके लिए आपको 52 प्रतिशत अधिक क़ीमत चुकानी पड़ती है। इसके अलावा ट्रेनों का घण्टों लेट होना व रद्द होना सामान्य सी बात हो चुकी है। अगर सुफरफास्ट ट्रेनों की बात करें, जिसकी समान्य गति 123 कि.मी प्रति घण्टा होनी चाहिए, उन ट्रेनों की गति 55 कि.मी प्रति घण्टा है। वहीं मोदीजी देश को "बुलेट ट्रेन"(जिसकी गति 250 किलोमीटर प्रति घण्टे होती है) का लॉलीपॉप 2014 से पकड़ा रहे हैं। अगर ट्रेनों के रद्द होने की बात करें तो बीते 5 वर्षों में 1,16,060 ट्रेन रद्द हो चुकी है। ट्रेनों को समय पर चलाने और रफ़्तार को बढ़ाने का बहाना लेकर मोदी सरकार रख-रखाव के काम को भी आउटसोर्स करने, यानी निजी कम्पनियों को दे रही है। रेलवे में हर ट्रेन के रख-रखाव के निर्धारित समय को छह घण्टे से घटाकर दो घण्टे करने की योजना है। ऐसे में ट्रेन के रख-रखाव के समय को कम करने और इस बेहद महत्वपूर्ण काम को बाहर की कम्पनियों द्वारा ठेके पर कराना यात्रियों की ज़िन्दगी के साथ खिलवाड़ करना है।

साथ ही पिछले कुछ सालों में रेलवे ने टिकट रद्द करने, तत्काल बुकिंग, प्रीमियम किराया आदि से भी हज़ारों करोड़ की कमाई की है। दूसरी ओर आम यात्रियों के लिए सुविधाएँ बढ़ने के बजाय बदतर हो गयी हैं। बाक़ी ट्रेन में सफ़र करते हुए साफ़-सफ़ाई की स्थिति से तो सब वाक़िफ हैं। भारतीय रेल इस समय जिन इन्जनों, रेल के डिब्बों, सिग्नल व्यवस्था आदि का इस्तेमाल कर रही है, वे पहले ही पुराने पड़ चुके हैं। रेलवे को अपने आधारभूत ढ़ाँचे को और दुरुस्त करने की ज़रूरत है, जबकि रेलवे बीते 10 वर्षों में इन्फ्रास्ट्रक्चर पर 2.5 करोड़ खर्च करने के दावा करती है। गोदी मीडिया भी बड़ी बेशर्मी के साथ सरकार का बचाव कर रही है कि मोदी सरकार के राज में ट्रेन हादसे में कमी आयी है, जबकि सच्चाई यह है कि राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के आँकड़ों से पता चलता है कि पिछले 10 सालों में ट्रेन दुर्घटनाओं के कारण कुल 2.6 लाख लोगों की मौत हुई है। इसपर यह गोदी मीडिया चुप्पी साध लेती है।

एक ओर रेलवे का नेटवर्क विस्तारित किया गया है, दूसरी ओर रेलवे में कर्मचारियों की संख्या को लगातार कम करके मोदी सरकार मौजूदा कर्मचारियों पर काम के बोझ को भयंकर तरीके से बढ़ा रही है। ऐसे में, दुर्घटनाओं और त्रासदियों की संख्या में बढ़ोत्तरी की सँभावना नैसर्गिक तौर पर बढ़ेगी ही। ऐसी जर्जर अवरचना के भीतर मोदी सरकार बुलेट ट्रेन के शेखचिल्ली के ख़्वाब दिखा रही है, तो इससे बड़ा भद्दा मज़ाक और कुछ नहीं हो सकता। तात्कालिक तौर पर निश्चय ही ऐसी दुर्घटनाओं के लिए किसी व्यक्ति की चूक या ग़लती ज़िम्मेदार नज़र आ सकती है। लेकिन यह एक व्यवस्थागत समस्या है जिसके लिए मौजूदा मोदी सरकार की छँटनी, तालाबन्दी और ठेकाकरण की नीतियाँ और रेलवे को टुकड़ों-टुकड़ों में निजी धन्नासेठों के हाथों में सौंप देने की मोदी सरकार की योजना ज़िम्मेदार है। यह मोदी सरकार की पूँजीपरस्त और लुटेरी नीतियों का परिणाम है। इस बात को हमें समझना होगा क्योंकि सरकारें ऐसी त्रासदियों की ज़िम्मेदारी भी जनता पर डाल देती हैं और अपने आपको कठघरे से बाहर कर देती हैं। देश के सबसे बड़े सरकारी व सबसे ज़्यादा रोज़गार पैदा करने वाले संस्थान को बर्बादी के कगार पर ला खड़ा करने और उसे मुनाफ़ाखोरों के हाथों बेचने के ख़िलाफ़ संगठित प्रतिरोध की ज़रूरत है, क्योंकि यह लड़ाई सिर्फ़ रेलकर्मियों की नहीं है, ये लड़ाई सभी मेहनतकशों की लड़ाई है। इस लड़ाई को मोदी सरकार की जनविरोधी नीतियों के ख़िलाफ़ व्यापक प्रतिरोध से जोड़ने की ज़रूरत है।

"ओवरकोट के बिना शिकागो की सर्दियों में ज़िन्दा रहना मुश्किल था और यूर्गिस को रोज़ फैक्टरी तक जाने के लिए पाँच-छह मील चलना पड़ता था। रेल से जाने के लिए एक जगह ट्रेन बदलनी पड़ती थी। कानून के मुताबिक़ एक ही टिकट दूसरी ट्रेन में भी चलना चाहिए था लेकिन रेलवे कॉरपोरेशन ने हर रूट की अलग-अलग कम्पनियाँ बनाकर इस नियम को बेकार कर दिया था। इसलिए अगर यूर्गिस ट्रेन में जाना चाहता तो उसे दो बार पाँच-पाँच सेण्ट के टिकट खरीदने पड़ते यानी आने-जाने में वह अपनी कमाई का करीब दस प्रतिशत हिस्सा रेल कम्पनी के हवाले कर देता। इसलिए रात को बेहद थकान और सुबह कड़ाके की ठण्ड के बावजूद यूर्गिस पैदल चलना ही पसन्द करता था। मज़दूरों के आने-जाने के समय पर ट्रेन चलाने वाली कम्पनी इतने कम डिब्बे चलाती थी कि उनकी एक-एक खिड़की से लोग लटके रहते थे, यहाँ तक कि कई लोग डिब्बों की बर्फ से ढँकी छतों पर भी बैठे रहते थे। डिब्बों के दरवाज़े कभी बन्द नहीं होते थे इसलिए उनके अन्दर भी बाहर जैसी ही ठण्ड रहती थी।"

(अमेरिकी लेखक अप्टन सिंक्लेयर के मशहूर उपन्यास 'जंगल' का यह अंश करीब 115 साल पहले अमेरिका के एक कारख़ाना इलाक़े का हाल बताता है।)

मज़दूर आन्दोलन में मौजूद किन प्रवृत्तियों के ख़िलाफ़ मज़दूर वर्ग का लड़ना ज़रूरी है?

1. क्रान्तिकारी सर्वहारा को अर्थवाद के विरुद्ध निर्मम संघर्ष चलाना होगा!

(ग्यारहवीं किश्त)

● शिवानी

पिछले अंक में हमने देखा कि किस प्रकार रूस में अर्थवाद के पैरोकार, लेनिन व उनके साथियों पर "षड्यन्त्रकारी" होने का आरोप लगाते हैं और किस प्रकार लेनिन इन आरोपों का तर्कपूर्ण खण्डन प्रस्तुत करते हैं। इसके साथ ही लेनिन यह भी बताते हैं कि एक मज़बूत केन्द्रीय ढाँचे वाली हिरावल पार्टी का अभिप्राय जनवाद की अनुपस्थिति नहीं होता है बल्कि सही मायने में जनवाद को सुचारू तरीक़े से लागू करने के लिए ऐसे ही सांगठनिक ढाँचे की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत पार्टी संगठन में "व्यापक जनवाद" की कोरी दलीलें "एक बेकार और हानिकारक खिलौने से अधिक कुछ नहीं हो सकता है।" दरअसल खुलेपन और जनवाद की वक़ालत करने वाला इस तरह का शुद्ध सिद्धान्त वस्तुगत परिस्थितियों का मूल्यांकन किये बगैर एक बेहद बचकानी समझदारी का प्रदर्शन करता हैं और राज्यसत्ता के दमनकारी चरित्र की अनदेखी करता है। ऐसी समझदारी बुर्जुआ उदारतावादी विभ्रम से प्रस्थान करते हुए क्रान्तिकारी संगठनों को राज्यसत्ता के रहमोकरम पर छोड़ने की ज़िद पाले रहती है और हिरावल पार्टी की भूमिका को कम करके आँकती है। लेनिन बताते हैं कि ऐतिहासिक अनुभव ने इस समझदारी को ग़लत साबित किया है। लेनिन **'क्या करें?'** में लिखते हैं:

> "हमारे आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्ताओं के लिए एकमात्र गम्भीर और सच्चा सांगठनिक उसूल यही होना चाहिए कि वे संगठन के कामों को सख्ती से गुप्त रखें, सदस्यों का चुनाव करते समय ज़्यादा से ज़्यादा सख्ती बरतें और पेशेवर क्रान्तिकारी तैयार करें। इतना हो जाये, तो "जनवाद" से भी बड़ी एक चीज़ की हमारी लिए गारण्टी हो जायेगी: वह यह कि क्रान्तिकारियों के बीच सदा पूर्ण, कॉमरेडाना और पारस्परिक विशवास क़ायम रहेगा।"

इसके बाद लेनिन **स्थानीय कामों व अखिल रूसी कामों (केन्द्रीय देशव्यापी कामों) के पारस्परिक सम्बन्ध** के बारे में क्रान्तिकारी दृष्टिकोण स्पष्ट करते हैं। लेनिन कहते हैं कि आम तौर पर यह भय प्रकट किया जाता है कि एक केन्द्रीकृत संगठन बनने से हो सकता है कि स्थानीय काम के मुक़ाबले अखिल रूसी काम को ज़्यादा महत्व दिया जाने लगे, मज़दूर आन्दोलन को धक्का पहुँचे, आम मेहनतकश जनसमुदायों से हमारा सम्पर्क कमज़ोर हो और स्थानीय उद्वेलन की जड़ें आम तौर पर कमज़ोर हों। लेनिन लिखते हैं कि इस ऐतराज़ का हम यह जवाब दते हैं कि पिछले चन्द वर्षों से हमारे आन्दोलन की यही कमज़ोरी रही है कि हमारे स्थानीय कार्यकर्ता स्थानीय काम में बहुत ज़्यादा डूबे हुए रहे हैं; और इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि अब देशव्यापी काम को थोडा ज़्यादा महत्व दिया जाये। लेनिन के अनुसार ऐसा करने से स्थानीय व देशव्यापी कामों के सम्बन्ध टिकाऊ हो जायेंगे और इससे स्थानीय उद्वेलन और मज़बूत होगा।

लेनिन अपनी इस बात को स्पष्ट करने के लिए स्थानीय अखबारों व अखिल रूसी अखबार का उदाहरण देते हैं और बताते हैं कि अनियमित तौर पर कई स्थानीय अखबार निकालने से कहीं ज़्यादा बेहतर है कि नियमित तौर एक एक अखिल रूसी अखबार निकाला जाये। लेनिन के अनुसार स्थानीय अखबारों की यह अनियमितता दरअसल क्रान्तिकारी कामों को संगठित करने की दिशा में बिखराव और नौसिखुआपन ही दर्शाती है और यह भी दिखलाती है कि आन्दोलन की स्वतःस्फूर्त प्रगति की तुलना में क्रान्तिकारी संगठन बहुत पिछड़ा हुआ है। यही काम यदि बिखरे तरीक़े से कई स्थानीय दलों द्वारा नहीं बल्कि केन्द्रीकृत तौर पर एक ही संगठन द्वारा अंजाम दिया जाये तो लेनिन के अनुसार न सिर्फ क्रान्तिकारी शक्तियों की बहुत-सी मेहनत बचेगी बल्कि कामों में भी कहीं अधिक टिकाऊपन आयेगा और उनके आपसी तार भी नहीं टूटेंगे। **लेनिन जोड़ते हैं कि अपने अखबार को सिद्धान्त के मामले में दृढ़ बनाये रखना और उसे एक राजनीतिक मुखपत्र के स्तर तक उठा ले जाने का काम कोई केन्द्रीकृत तौर पर मज़बूत संगठन ही कर सकता है।**

लेनिन आगे कहते हैं कि इस बात से किसी को ऐतराज़ नहीं होगा कि हमारे पास स्थानीय अखबार होने चाहिए, हमारे पास क्षेत्रीय अखबार भी होने चाहिए और हमारे पास अखिल रूसी अखबार भी होने चाहिए। लेकिन जब हम किसी ठोस सांगठनिक समस्या को हल करने चलते हैं तो हमें समय और परिस्थिति का ध्यान रखना पड़ता है और **आज की बिखराव की स्थिति में क्रान्तिकारियों के समक्ष सबसे ज़रूरी कार्यभार एक देशव्यापी अखबार का प्रकाशन है।** इसके अलावा, अखबार का स्तर हमें ऊपर उठाना चाहिए, न कि नीचे गिराकर उसे कारख़ाने के पर्चे के धरातल पर ले आना चाहिए। लेनिन यह भी इंगित करते हैं कि केन्द्रीय अखबार के मुकाबले स्थानीय अखबारों की प्रधानता आन्दोलन के निचले व आदिम स्तर का परिचायक भी हो सकता है और आन्दोलन के उन्नत स्तर का भी। यानी यदि किसी जगह अभी केवल स्थानीय अखबार ही निकलते हैं तो यह दिखलाता है कि आन्दोलन अभी नौसिखुएपन के दलदल में फँसकर हाथ-पैर मार रहा है और इसके विपरीत यदि केन्द्रीय अखबार के साथ स्थानीय अखबार भी प्रकाशित हो रहे हैं तो यह दिखलाता है कि उस जगह मज़दूर आन्दोलन सर्वांगीण भण्डाफोड़ और सर्वांगीण उद्वेलन के काम में महारत हासिल कर चुका है और अब आन्दोलन केन्द्रीय अखबार के अलावा स्थानीय अखबारों को भी निकालने की आवश्यकता महसूस कर रहा है। लेनिन कहते हैं कि अभी फ़िलहाल रूस में पहली स्थिति मौजूद है और अभी आन्दोलन काफ़ी दरिद्र अवस्था में है। लेनिन लिखते हैं:

> "अभी तक हमारे अधिकतर स्थानीय संगठन प्रायः केवल स्थानीय अखबारों के बारे में ही सोचते रहे हैं और उनका लगभग सारा काम इन्हीं को लेकर होता रहा है। यह ठीक नहीं है – इसकी बिलकुल उलटी हालत होनी चाहिए: अधिकतर स्थानीय संगठनों को प्रधानतया एक अखिल रूसी अखबार के प्रकाशन के बारे में सोचना चाहिए और उनके काम का मुख्य उद्देश्य भी यही होना चाहिए। जब तक यह नहीं किया जाता तक तक हम एक भी ऐसा अखबार स्थापित नहीं कर पायेंगे जो सर्वांगीण प्रेस उद्वेलन के ज़रिये आन्दोलन की सेवा कर सके। जब यह काम हो जायेगा तब आवश्यक केन्द्रीय अखबार और आवश्यक स्थानीय अखबारों के बीच अपने आप सही तरह के सम्बन्ध स्थापित हो जायेंगे।"

कुल मिलाकर कहें तो **देशव्यापी केन्द्रीय कामों की वजह से स्थानीय काम प्रभावित नहीं होते हैं, उल्टे केन्द्रीकरण के साथ स्थानीय कामों में भी गतिशीलता आती है, बिखराव कम होता जाता है और नौसिखुएपन और स्वतःस्फूर्तता की सीमा को लाँघकर क्रान्तिकारी आन्दोलन एक उन्नत सचेतन धरातल पर पहुँच जाता है।**

लेनिन अलग से यह भी स्पष्ट करते हैं कि आर्थिक संघर्ष के क्षेत्र में भी स्थानीय काम के बजाय अखिल रूसी काम को अधिक महत्व देने की आवश्यकता है। लेनिन याद दिलाते हैं कि आर्थिक संघर्ष एक ट्रेड/उद्योग का संघर्ष होता है और ठीक इसी कारण से आर्थिक संघर्ष के लिए ज़रूरी होता है कि मज़दूरों का संगठन न केवल उनके काम करने के स्थान के अनुसार हो बल्कि पूरे उद्योग के अनुसार हो। देखें लेनिन कितनी सटीक बात चिह्नित करते हैं जो आज तक भी अर्थवादियों की समझ से बाहर है:

> "हमारे मालिक जितनी तेज़ी से तरह-तरह की कम्पनियों और सिण्डीकेटों में संगठित होते जा रहे हैं मज़दूरों के लिए उद्योग/ट्रेड के अनुसार अपना संगठन बनाना उतना ही अधिक आवश्यक होता जा रहा है। *हमारा बिखराव और हमारा नौसिखुआपन संगठन के उस काम के रास्ते में एक बड़ी भारी रुकावट है, जिसके लिए क्रान्तिकारियों का एक ऐसा अखिल-रूसी निकाय (यानी पार्टी – लेखिका) का होना आवश्यक है जो मज़दूरों की अखिल रूसी ट्रेड यूनियनों का नेतृत्व कर सके।*" (*ज़ोर हमारा*)

जैसा कि हमने पहले भी ज़िक्र किया था रूसी अर्थवादी एक अखिल रूसी अखबार की ज़रूरत को ख़ारिज करते थे और लेनिन व अन्य इस्क्रावादियों पर आरोप लगा रहे थे कि वे अखिल रूसी अखबार की योजना के ज़रिये पार्टी के संगठनों और समितियों को दरकिनार कर रहे हैं। लेनिन इन सभी आरोपों का भी नुक्तेवार अपनी रचना **'क्या करें?'** में जवाब देते हैं। अभी की हमारी चर्चा के लिए उसके विस्तार और विवरण में जाने की ज़रूरत हमें नहीं है। अर्थवाद पर अपनी शुरुआती चर्चा में हमने यह भी बताया था कि लेनिन के अनुसार एक अखिल रूसी अखबार सामूहिक प्रचारक, सामूहिक उद्वेलक और सामूहिक संगठनकर्ता की भूमिका अदा कर सकता है जिस बात पर भी अर्थवादियों की आपत्ति थी क्योंकि उन्हें आम तौर पर ही क्रान्तिकारी राजनीति से परहेज़ था और संघर्ष का क्षितिज ही उनके लिए आर्थिक संघर्ष का क्षेत्र था। यह अर्थवादी सोच से उपजी उनकी राजनीतिक समझदारी की शून्यता थी कि वे पार्टी निर्माण के लिए एक देशव्यापी अखबार की अहमियत को समझने में नाकाम थे। लेनिन का स्पष्ट मत था कि "असल बात (यह) है कि मज़बूत राजनीतिक संगठनों को प्रशिक्षित करने का एक अखिल रूसी अखबार के अलावा और कोई तरीक़ा नहीं है।" इसके साथ ही अखिल रूसी राजनीतिक अखबार भण्डाफोड़, प्रचार और उद्वेलन की गतिविधियों को भी संगठित करने में महती भूमिका निभाता है। देखें लेनिन अर्थवाद के पैरोकारों को किन शब्दों में जवाब देते हैं जब वे एक अखिल रूसी राजनीतिक अखबार की योजना को महज़ "कागज़ी" कार्यवाई घोषित करते हैं:

> "वे लोग जो *इस्क्रा* की "योजना" को "किताबीपन" का सूचक समझते हैं, उन्होंने योजना का सारतत्व ज़रा भी नहीं समझा है और वे सोचते हैं कि इस समय सबसे उपयोगी साधन के रूप में जिस चीज़ का सुझाव दिया गया है, वही लक्ष्य है। प्रस्तावित योजना के स्पष्टीकरण के लिए जो दो उपमाएँ दी गयी थीं, उनका अध्ययन करने की तकलीफ़ इन लोगों ने गवारा नहीं की है। *इस्क्रा* ने लिखा था: एक अखिल रूसी राजनीतिक अखबार का प्रकाशन वह मुख्य सूत्र होना चाहिए, जिसके सहारे हम इस संगठन को (अर्थात एक ऐसे क्रान्तिकारी संगठन को, जो प्रत्येक विरोध और प्रत्येक विस्फोट का समर्थन करने के लिए हमेशा तैयार रहे) अडिग भाव से विकसित कर सकेंगे तथा उसे अधिक गहरा और व्यापक बना सकेंगे। अब मुझे कृपया यह बताइये: जब राजमिस्त्री कोई बहुत बड़ी इमारत खड़ी करने के लिए, जितनी बड़ी इमारत पहले कभी न देखी गयी हो, उसके अलग-अलग हिस्सों में ईंटें बिछाते हैं, तब वे यदि प्रत्येक ईंट के वास्ते ठीक स्थान का पता लगाने के लिए, पूरे काम के अन्तिम लक्ष्य को हमेशा अपने सामने रखने के लिए और न केवल हरेक ईंट का, बल्कि ईंट के हरेक टुकड़े का सही इस्तेमाल करने के लिए, ताकि वह पहले बिछायी गयी और बाद में बिछायी जानेवाली ईंटों के साथ जुड़कर एक पूर्ण और सबको साथ मिलाकर चलनेवाली रेखा बन जाये- इस सबके लिए यदि वे एक डोरी इस्तेमाल करते हैं, तो क्या उसे "कागज़ी" काम कहा जायेगा? और क्या अपने पार्टी जीवन में हम ठीक एक ऐसे ही समय से नहीं गुज़र रहे हैं, जबकि हमारे पास ईंटें और राजमिस्त्री तो हैं, पर सबका पथप्रदर्शन करने वाली वह डोरी नहीं है, जिसे सब देख सकें और जिसके मुताबिक सभी काम कर सकें?"

लेनिन इसके बाद दूसरी उपमा पर आते हैं जिसकी चर्चा हम पहले भी कर चुके हैं:

> "अखबार न केवल सामूहिक प्रचारक और सामूहिक उद्वेलक का, बल्कि सामूहिक संगठनकर्ता का भी काम करता है। इस दृष्टि से उसकी तुलना किसी बनती हुई इमारत के चारों ओर बाँधे गये पाड़ *(स्कैफोल्डिंग)* से की जा सकती है; इससे इमारत की रूपरेखा प्रकट होती है और इमारत बनाने वालों को एक-दूसरे के पास आने-जाने में सहायता मिलती है, इससे वे काम का बँटवारा कर सकते हैं, अपने संगठित श्रम द्वारा प्राप्त आम परिणाम देख सकते हैं।"

यह पाड़ कोई स्थायी इन्तज़ाम नहीं होता है, लेकिन फिर भी इमारत को खड़ा करने के लिए ज़रूरी होता है जब तक कि इमारत का ढाँचा बनकर तैयार नहीं हो जाता है। और लेनिन एक बार फिर ज़ोर देकर रेखांकित करते हैं कि बिना इस पाड़ को बाँधे, आज के दौर में जिस इमारत की हमें ज़रूरत है, यानी देशव्यापी क्रान्तिकारी पार्टी, उसे खड़ा नहीं किया जा सकता है।

इसके आगे की चर्चा अगले अंक में जारी रहेगी।

(अगले अंक में जारी)

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला – 21

अध्याय-16 *(पिछले अंक से जारी)*

पूँजीवादी संचय का आम नियम

• अभिनव

प्रगतिशील स्तर पर पूँजी संचय के साथ बढ़ती सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी, या, औद्योगिक रिज़र्व सेना

हमने देखा कि किस प्रकार पूँजी संचय पूँजीवादी उत्पादन का आम नियम होता है। हमने यह भी देखा कि पूँजीवादी संचय का आम नियम यह होता है कि वह सामान्यत: समान स्तर पर नहीं होता बल्कि प्रगतिशील स्तर पर होता है। यानी, पूँजीवादी उत्पादन के साथ श्रम की उत्पादकता बढ़ती है और पूँजी का आवयविक संघटन भी बढ़ता है। हमने यह भी समझा कि पूँजी संचय का नतीजा होता है पूँजी का सान्द्रण और संकेन्द्रण। पूँजी के सान्द्रण और संकेन्द्रण के नतीजे के तौर पर पूँजी का जिस दर से संचय होता है, उससे भी तेज़ गति से पूँजी का आवयविक संघटन बढ़ता है। और हमने यह भी समझा कि पूँजी का आवयविक संघटन बढ़ने का नतीजा यह होता है कि कुल सामाजिक पूँजी की वृद्धि के साथ उसका स्थिर पूँजी वाला हिस्सा सापेक्षिक रूप से तेज़ गति से बढ़ता है, जबकि उसकी तुलना में, यानी उसके सापेक्ष, परिवर्तनशील पूँजी की मात्रा घटती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि परिवर्तनशील पूँजी की निरपेक्ष मात्रा में अनिवार्यत: कमी होती है। वजह यह कि कुल सामाजिक पूँजी की मात्रा पूँजी के बढ़ते संचय के साथ बढ़ती जाती है। इसलिए प्रगतिशील स्तर पर पूँजी संचय और कुल सामाजिक पूँजी की मात्रा में बढ़ोत्तरी के साथ निरपेक्ष रूप में कहें तो परिवर्तनशील पूँजी की मात्रा भी *आम तौर पर* बढ़ती है। लेकिन उसकी मात्रा में *स्थिर पूँजी के सापेक्ष* कमी आती है। यानी जिस दर से स्थिर पूँजी बढ़ती है, परिवर्तनशील पूँजी उससे कहीं कम दर पर बढ़ती है।

इसका परिणाम यह होता है कि पूँजी संचय के साथ आम तौर पर श्रमशक्ति की माँग में *सापेक्षिक कमी* होती है। यानी पूँजी संचय के साथ कुल सामाजिक पूँजी में बढ़ोत्तरी होने के परिणामस्वरूप पहले जिस दर से श्रमशक्ति की माँग भी बढ़ोत्तरी होती थी, अब वह उस दर से नहीं होती बल्कि उससे कम दर से होती है। मार्क्स लिखते हैं:

> *"चूँकि श्रम की माँग कुल पूँजी की मात्रा से नहीं बल्कि केवल इसके परिवर्तनशील हिस्से से तय होती है, इसलिए कुल पूँजी में वृद्धि के साथ वह माँग उसी अनुपात में बढ़ने के बजाय, जैसा कि हमने पहले माना था, प्रगतिशील स्तर पर गिरती है। जैसे-जैसे कुल पूँजी की मात्रा बढ़ती है, वैसे-वैसे यह कुल पूँजी की मात्रा की तुलना में सापेक्षिक तौर पर गिरती है और बढ़ती दर पर सापेक्षिक तौर पर गिरती है। सच है कि कुल पूँजी की वृद्धि के साथ उसका परिवर्तनशील हिस्सा, उसमें शामिल श्रम भी बढ़ता है, लेकिन लगातार गिरते अनुपात में।"* (कार्ल मार्क्स. 1982. *पूँजी, खण्ड-1,* पेंगुइन बुक्स, पृ. 781-82)

परितर्वनशील पूँजी की मात्रा में सापेक्षिक कमी के साथ ही पूँजीवादी संचय के परिणामस्वरूप पूँजीवादी समाज में काम करने वाली आबादी में बढ़ोत्तरी होती है। पूँजी संचय की प्रक्रिया छोटी पूँजियों व छोटे माल उत्पादकों को उजाड़ते हुए लगातार सर्वहारा वर्ग की तादाद में बढ़ोत्तरी करती है। साथ ही, आदिम संचय की प्रक्रिया (इसके बारे में हम अगले अध्याय में विस्तार से जानेंगे – ले.) के ज़रिये उत्पादन व जीविका के साधनों से भी एक आबादी के उजाड़े जाने की प्रक्रिया पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के स्थापित हो जाने के बाद भी जारी रहती है। यानी, जनता का वह हिस्सा जो अभी भी जल, जंगल, ज़मीन का साझी सम्पत्ति के तौर पर किसी हद तक साझा इस्तेमाल करता रहता है, उसे इन संसाधनों का निजीकरण कर उसके उत्पादन व जीविका के साधनों से वंचित किया जाता है और इस रूप में उसे भी सर्वहाराओं की भीड़ में शामिल किया जाता रहता है। यह पूँजी संचय की लगातार जारी प्रक्रिया से ही जुड़ा होता है : अधिक से अधिक उत्पादन व जीविका के साधनों को पूँजी में तब्दील किया जाना। इस प्रकार, जहाँ एक ओर परिवर्तनशील पूँजी में हो रही सापेक्षिक कमी के साथ श्रमशक्ति की माँग में भी कुल पूँजी में होने वाली बढ़ोत्तरी की तुलना में सापेक्षिक गिरावट आती है, वहीं पूँजी संचय अपनी नैसर्गिक गति से मज़दूर वर्ग के आकार में भी बढ़ोत्तरी करता रहता है। लिहाज़ा, पूँजी संचय की इस प्रक्रिया का परिणाम यह होता है कि एक सापेक्षिक रूप से अतिरिक्त या फ़ालतू आबादी का सृजन होता रहता है। सापेक्षिक रूप से अतिरिक्त आबादी इसलिए क्योंकि यह आबादी अपने आप में, निरपेक्ष रूप में अतिरिक्त नहीं होती है, बल्कि पूँजी की ज़रूरतों के सापेक्ष अतिरिक्त होती है। पूँजी को अपना मूल्य-संवर्धन करने के लिए जितने मज़दूरों की आवश्यकता होती है, उनकी संख्या के सापेक्ष यह आबादी अतिरिक्त या फ़ालतू होती है।

यह प्रक्रिया समूचे पूँजीवादी उत्पादन के अलग-अलग क्षेत्रों में एकसमान रूप में नहीं घटित होती है। अगर हम अलग-अलग उत्पादन की शाखाओं को देखें, तो कुछ में हम पाते हैं कि कुल निवेशित पूँजी पहले के ही समान रही, लेकिन वहाँ पूँजी के आवयविक संघटन में बढ़ोत्तरी हुई, यानी, परिवर्तनशील पूँजी में निरपेक्ष कमी और स्थिर पूँजी में वृद्धि हुई। ऐसी शाखाओं में मज़दूरों की संख्या निरपेक्ष रूप से काम से बाहर धकेल दी जाती है। इस स्थिति को, यानी कुल पूँजी के समान रहने पर पूँजी के आवयविक संघटन में बढ़ोत्तरी को मार्क्स साधारण सान्द्रण (simple concentration) की संज्ञा देते हैं। इसी प्रकार, कुछ अन्य शाखाओं में हम देख सकते हैं कि कुल पूँजी की मात्रा भी बढ़ी है और साथ ही आवयविक संघटन उस दर से ज़्यादा दर से बढ़ा। यहाँ पर भी मज़दूरों की संख्या में निरपेक्ष कमी आती है, क्योंकि पूँजी संचय और विस्तारित पुनरुत्पादन जितने मज़दूरों को आकर्षित करता है, आवयविक संघटन में बढ़ोत्तरी उससे ज़्यादा को काम से बाहर धकेलती है। उसी प्रकार, ऐसा भी हो सकता है कि कुल पूँजी का परिमाण बढ़े और आवयविक संघटन उसी दर से न बढ़े। इस सूरत में आवयविक संघटन में बढ़ोत्तरी जितने मज़दूरों को काम से बाहर करती है, उससे ज़्यादा मज़दूरों को पूँजी संचय और विस्तारित पुनरुत्पादन आकर्षित करते हैं, यानी काम पर लगाते हैं। कुछ उत्पादन शाखाओं में ऐसा भी होता है कि पूँजी का आवयविक संघटन समान ही बना रहता है, तकनीकी आधार में कोई परिवर्तन नहीं आता, लेकिन फिर भी पूँजी संचय और विस्तारित पुनरुत्पादन होता है। यहाँ पर पूँजी संचय मज़दूरों को कहीं ज़्यादा संख्या को आकर्षित करता है और मज़दूरों की संख्या में निरपेक्ष बढ़ोत्तरी होती है। कुल मिलाकर, समूची पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में आम तौर पर पूँजी संचय जारी रहता है और साथ ही पूँजी के आवयविक संघटन में बढ़ोत्तरी होती रहती है।

मज़दूरों की पहले से ज़्यादा बड़ी संख्या को पूँजी संचय आकर्षित करता है या ज़्यादा बड़ी संख्या को विकर्षित करता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि पूँजी संचय की दर पूँजी के आवयविक संघटन में बढ़ोत्तरी की दर से ज़्यादा है या कम। प्रति मशीन मज़दूरों की संख्या में निश्चित ही सामान्य तौर पर गिरावट आती है। लेकिन यदि कुल मशीनों की संख्या में बढ़ोत्तरी, यानी उत्पादन के पैमाने में होने वाली बढ़ोत्तरी, प्रति मशीन मज़दूर की संख्या में आने वाली गिरावट की तुलना में ज़्यादा है, तो पूँजी के बढ़ते आवयविक संघटन के बाद भी काम पर रखे जाने वाले मज़दूरों की संख्या में निरपेक्ष बढ़ोत्तरी आ सकती है। वहीं अगर इसके उलट स्थिति हुई, तो काम पर रखे जाने वाले मज़दूरों की संख्या में निरपेक्ष गिरावट आ सकती है। साथ ही, उत्पादन के पैमाने के विस्तार और साथ ही सर्वहारा आबादी में पूँजीवादी संचय के फलस्वरूप ही आने वाली निरपेक्ष वृद्धि की सूरत में यह भी होता है कि रोज़गारशुदा मज़दूरों की संख्या में भी वृद्धि हो और बेरोज़गार मज़दूरों की संख्या में भी वृद्धि हो। आम तौर पर और दीर्घकालिक रूप में देखें तो बेरोज़गारों की रिज़र्व सेना में होने वाली बढ़ोत्तरी रोज़गारशुदा मज़दूरों की तादाद में होने वाली बढ़ोत्तरी से ज़्यादा तेज़ रफ्तार से होती है।

एक ओर पूँजी संचय की प्रक्रिया उत्पादन के पैमाने का सामान्य रूप में विस्तार करती है, मज़दूरों की पहले से बड़ी संख्या को काम पर लगाती है, निरन्तर उन मज़दूरों के श्रम की उत्पादकता में बढ़ोत्तरी करती है, और दूसरी ओर, *ठीक इसी प्रक्रिया में* वह मज़दूरों को पहले से बड़े पैमाने पर आकर्षित भी करती है और पहले से बड़े पैमाने पर विकर्षित भी करती है। मार्क्स लिखते हैं:

> *"...पूँजी के आवयविक संघटन और उसके तकनीकी रूप में बदलाव की रफ़्तार में बढ़ोत्तरी होती है, और अधिक से अधिक उत्पादन की शाखाएँ इस बदलाव में शामिल होती जाती हैं, कभी-कभी एक साथ तो कभी-कभी बारी-बारी से। इस प्रकार काम करने वाली आबादी पूँजी के संचय को भी पैदा करती है और उन साधनों को भी पैदा करती है जिनके ज़रिये वह सापेक्षिक रूप से फ़ालतू बनायी जाती है; और यह इस काम को हमेशा बढ़ते स्तर के साथ अंजाम देती है। यह पूँजीवादी उत्पादन पद्धति का विशिष्ट जनसंख्या का नियम है; और वास्तव में हर विशिष्ट ऐतिहासिक उत्पादन पद्धति के अपने विशेष जनसंख्या के नियम होते हैं, जो उसी विशिष्ट क्षेत्र में ही ऐतिहासिक तौर पर वैध होते हैं। जनसंख्या का कोई अमूर्त नियम केवल पेड़-पौधों और पशुओं के लिए अस्तित्वमान होता है और वह भी उस सूरत में जब इंसानों द्वारा कोई ऐतिहासिक हस्तक्षेप मौजूद न हो।"* (*वही,* पृ. 783-784)

लेकिन पूँजी संचय और एक सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी का पैदा होना कोई एकतरफ़ा प्रक्रिया नहीं है। पूँजी संचय की प्रक्रिया सापेक्षिक रूप से अतिरिक्त आबादी को पैदा करती है, तो यह औद्योगिक रिज़र्व सेना भी पलटकर पूँजी संचय की प्रक्रिया को बढ़ते स्तर पर जारी रखने की पूर्वशर्त बनती है। पूँजी अपने मूल्य संवर्धन के लिए प्राकृतिक रूप से होने वाली जनसंख्या वृद्धि पर निर्भर नहीं करती है। वह अपने मूल्य संवर्धन के लिए आवश्यक बेरोज़गारों की सेना को अपनी आन्तरिक गति से पैदा करती है। मार्क्स आयरलैण्ड का उदाहरण देते हुए बताते हैं कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद के कारण पैदा अकाल व आर्थिक विसंगठन के कारण आयरलैण्ड से एक बहुत बड़ी आबादी आप्रवासन कर मुख्य रूप से अमेरिका व कुछ अन्य देशों में चली गयी। लेकिन आयरलैण्ड में पूँजीवादी विकास की प्रक्रिया में बची आबादी में से ही एक अतिरिक्त सापेक्षिक आबादी का सृजन हो गया। यह दिखलाता है कि *अपने आप में* प्राकृतिक व स्वत:स्फूर्त रूप से होने वाली जनसंख्या वृद्धि या उसमें आने वाला ठहराव पूँजी संचय के लिए कोई ऐसी बाधा या सीमा नहीं उपस्थित करता है जिसे पूँजी अपनी नैसर्गिक गति से पार नहीं कर सकती।

सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी स्वयं पूँजी संचय को पहले से ऊँचे स्तर पर जारी रखने की एक पूर्वशर्त बन जाती है। पूँजीवादी औद्योगिक विकास चक्रों में होता आया है जिसमें औसत गतिविधि, तेज़ी, संकट और ठहराव के चक्र आते रहते हैं। इन चक्रों के अनुसार, संकट और ठहराव के दौरों को छोड़ दें, तो औसत गतिविधि के दौर में और विशेष तौर पर तेज़ी के दौर में पूँजी नयी उत्पादन शाखाओं को पैदा भी करती है और उन पुरानी उत्पादन शाखाओं को अपने मातहत लाती है, जो अब तक उसके मातहत नहीं आयी थीं; साथ ही, पहले से जिन उत्पादन शाखाओं पर पूँजी अपना नियन्त्रण पहले ही स्थापित कर चुकी थी, उनका भी विस्तार होता है। नतीजतन, पूँजी के लिए एक आरक्षित औद्योगिक सेना, बेरोज़गारों की एक सेना की मौजूदगी अनिवार्य होती है। इसके बिना पूँजी का यह विस्तार सम्भव नहीं। केवल

(पेज 13 पर जारी)

पूँजीवादी संचय का आम नियम

(पेज 12 से आगे)

इस सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी की मौजूदगी के आधार पर ही पूँजी उत्पादन की किसी भी शाखा में कोई संकुचन किये बिना विस्तार कर सकती है। इस प्रकार बेरोज़गारों की यह रिज़र्व सेना जारी पूँजी संचय से पैदा होकर उसका आधार भी बनती है। मार्क्स लिखते हैं:

*"लेकिन अगर मज़दूरों की अतिरिक्त आबादी संचय या पूँजीवादी आधार पर होने वाले समृद्धि के विकास का एक अनिवार्य उत्पाद होती है, तो यह अतिरिक्त आबादी, पलटकर पूँजीवादी संचय का उत्तोलक (लीवर) भी बन जाती है, बल्कि कहना चाहिए यह पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के अस्तित्व का ही आधार बन जाती है। यह आबादी इस्तेमाल के लिए सहज व सुलभ उपलब्ध औद्योगिक रिज़र्व सेना होती है, जिस पर एक ऐसे निरपेक्ष रूप में पूँजी का अधिपत्य होता है, मानो पूँजी ने ही उसे अपनी लागत पर जन्म दिया हो। जनसंख्या की वास्तविक वृद्धि की सीमाओं से स्वतन्त्र वह पूँजी के मूल्य संवर्धन की बदलती आवश्यकताओं के हितों में पूँजी के द्वारा शोषण के लिए हमेशा तैयार मानवीय सामग्री की एक मात्रा को पैदा करती रहती है। संचय के साथ, और इसके साथ जारी श्रम की उत्पादकता के विकास के साथ, अचानक विस्तार की पूँजी की शक्ति भी बढ़ती है...संचय की उन्नति के साथ सामाजिक समृद्धि की आप्लावित होती (overflowing) मात्रा जिसे अतिरिक्त पूँजी में तब्दील किया जा सकता है, उत्पादन की उन पुरानी शाखाओं में उन्मत्तता के साथ घुस जाती है, जिनका बाज़ार अचानक फैलता है, या फिर नयी बनी शाखाओं, जैसे कि रेलवे आदि में घुस जाती है जो पुरानी शाखाओं के ही जारी विकास के परिणामस्वरूप आवश्यक बन जाती हैं। ऐसे सभी मामलों में, अन्य शाखाओं में उत्पादन के पैमाने को हानि पहुँचाये बिना आदमियों की बड़ी संख्या को अचानक निर्णायक क्षेत्रों में लगा देने की सम्भावना अनिवार्यत: मौजूद होनी चाहिए। अतिरिक्त आबादी इन लोगों की आपूर्ति करती है। आधुनिक उद्योग के विकास का पथ, जो कि औसत गतिविधि, उच्च दबाव के साथ उत्पादन, संकट और ठहराव के दसवर्षीय चक्र का रूप लेता है (छोटे-मोटे उतार-चढ़ावों द्वारा अवरोध के साथ), औद्योगिक रिज़र्व सेना या अतिरिक्त आबादी के निरन्तर बनने, उसके कमोबेश (उद्योगों द्वारा) सोख लिये जाने, और उसके फिर से बनने पर निर्भर करता है। पलटकर स्वयं औद्योगिक चक्र के बदलते दौर अतिरिक्त आबादी को भर्ती करते हैं, और उनके पुनरुत्पादन के सबसे ऊर्जावान अभिकर्ताओं में से एक भी बनते हैं।"** (वही, पृ. 784-85)

इसके अलावा, पूँजीपति हमेशा यह चाहते हैं कि पहले जितने मज़दूरों से ही ज़्यादा श्रम निचोड़ पाएँ। कभी वे मज़दूरी थोड़ी-बहुत बढ़ाते हैं, लेकिन उस बढ़ोत्तरी की तुलना में मज़दूरों से कहीं ज़्यादा श्रम निचोड़ते हैं, यानी, या तो वे श्रम की सघनता को बढ़ा देते हैं या फिर कार्यदिवस की लम्बाई को बढ़ा देते हैं। इसी प्रकार, वे तकनोलॉजी के विकास के साथ कुशल मज़दूरों की जगह अधिक से अधिक अर्द्धकुशल व अकुशल मज़दूरों को काम पर रखते हैं, जिनकी मज़दूरी कुशल मज़दूरों के मुकाबले कम होती है। इस प्रकार, परिवर्तनशील पूँजी में बढ़ोत्तरी किये बिना वे ज़्यादा श्रम की मात्रा का शोषण कर पाते हैं। इन तरक़ीबों का नतीजा यह होता है कि परिवर्तनशील पूँजी की एक इकाई के बदले वे श्रम की पहले से ज़्यादा मात्रा मज़दूरों से निचोड़ते हैं। साथ ही, इसका यह भी अर्थ होता है कि परिवर्तनशील पूँजी में होने वाली कोई भी बढ़ोत्तरी उसी अनुपात में मज़दूरों की संख्या में बढ़ोत्तरी नहीं करती है। इसके अलावा, जब आम तौर पर श्रम की उत्पादकता का विकास होता है, तो परिवर्तनशील पूँजी की मात्रा में कोई भी बढ़ोत्तरी पहले से कम संख्या में मज़दूरों को काम पर रखती है।

इन सब कारकों के चलते एक ओर रोज़गारशुदा मज़दूरों पर काम का दबाव बढ़ता जाता है और उनके श्रम के शोषण की सघनता और व्यापकता, दोनों में वृद्धि आती जाती है। दूसरी ओर, यही चीज़ बेरोज़गार मज़दूरों की रिज़र्व सेना के आकार में भी पहले से ज़्यादा तेज़ रफ़्तार से बढ़ोत्तरी करती है। रिज़र्व सेना में यह बढ़ोत्तरी काम करने वाले मज़दूरों के शोषण की दर में भी वृद्धि करती है क्योंकि यदि बेरोज़गार मज़दूरों की संख्या ज़्यादा होती है, तो इसका अर्थ यह होता है कि श्रमशक्ति की माँग की तुलना में श्रमशक्ति की आपूर्ति ज़्यादा हो जाती है। नतीजतन, काम पर लगे मज़दूरों की मोलभाव की क्षमता में कमी आती है, उनकी औसत मज़दूरी में कमी आती है और साथ ही उन्हें पूँजीपतियों की शर्तों पर काम करने के लिए पहले से ज़्यादा मजबूर होना पड़ता है। मार्क्स लिखते हैं:

*"मज़दूर वर्ग के रोज़गारशुदा हिस्से द्वारा अतिश्रम इसके रिज़र्व की कतारों को बढ़ाता है, जबकि, इसके विपरीत रिज़र्व सेना अपनी प्रतिस्पर्द्धा के कारण रोज़गारशुदा मज़दूरों को बाध्य करती है कि वे अतिश्रम की शर्तों को स्वीकार करें और पूँजी के आदेशों के अधीन रहें। मज़दूर वर्ग के एक हिस्से को कमरतोड़ अतिश्रम की दण्डाज्ञा के ज़रिये दूसरे हिस्से को जबरन निष्क्रियता की दण्डाज्ञा मिलने का यह कुचक्र अलग-अलग पूँजीपतियों को समृद्ध बनाने का ज़रिया बन जाता है और साथ ही सामाजिक संचय की प्रगति के अनुसार निर्धारित होने वाले स्तर पर औद्योगिक रिज़र्व सेना के उत्पादन को भी त्वरित गति देना है।"** (वही, पृ. 789-90)

मार्क्स यहाँ मज़दूरी के प्रश्न पर दोबारा आते हैं। वह बताते हैं कि मज़दूरी में आने वाले उतार-चढ़ाव वास्तव में इस औद्योगिक रिज़र्व सेना और श्रम की सक्रिय सेना, यानी रोज़गारशुदा मज़दूरों की तादाद के आपसी अनुपात पर निर्भर करता है। यह अनुपात और कुछ नहीं बल्कि श्रमशक्ति की माँग और आपूर्ति के समीकरण को दिखलाता है। इस प्रकार मज़दूरी मज़दूरों की निरपेक्ष जनसंख्या पर नहीं निर्भर करती है, बल्कि श्रम की सक्रिय सेना व श्रम की आरक्षित सेना के अनुपात पर निर्भर करती है। अपने लिए श्रम की आरक्षित सेना पूँजी संचय की प्रक्रिया अपनी आन्तरिक गति से ही पैदा करती रहती है, जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं। स्वयं यह अनुपात, यानी श्रम की सक्रिय सेना व श्रम की आरक्षित सेना का अनुपात, मुनाफ़े की दर की गति पर निर्भर करता है, जो अपने आपको औद्योगिक चक्र के अलग-अलग दौरों, मसलन, औसत गतिविधि का दौर, तेज़ी का दौर, संकट का दौर और ठहरावग्रस्तता का दौर, के रूप में अभिव्यक्त करती है। *अन्तत:, यह मुनाफ़ा और उसकी औसत दर की गति है, जो इस अनुपात को निर्धारित करती है।* तेज़ी के दौर में निवेश की दर में बढ़ोत्तरी होती है, पूँजी संचय व विस्तारित पुनरुत्पादन की दर में वृद्धि होती है और अक्सर यह दर आवयविक संघटन में होने वाली वृद्धि की दर से ज़्यादा होती है। यह वृद्धि बेरोज़गार मज़दूरों की फौज के एक हिस्से को समेट लेती है। लेकिन ठीक यही प्रक्रिया पूँजी के आवयविक संघटन को और ज़्यादा बढ़ाने, श्रम की उत्पादकता को और ज़्यादा बढ़ाने और नतीजतन फिर से मज़दूरों की एक आबादी को विकर्षित करने, यानी काम से बाहर करने के परिणाम को भी जन्म देती है। मार्क्स लिखते हैं:

*"अगर इसका (पूँजी का-अनु.) संचय एक ओर श्रम की माँग बढ़ाता है, तो वहीं दूसरी ओर यह 'मज़दूरों को मुक्त कर' उनकी आपूर्ति को भी बढ़ाता है, जबकि ठीक उसी वक़्त बेरोज़गारों का दबाव रोज़गारशुदा मज़दूरों को और ज़्यादा श्रम देने को बाध्य करता है, और इस प्रकार श्रम की आपूर्ति को एक हद तक मज़दूरों की आपूर्ति से स्वतन्त्र बना देता है। इस आधार पर श्रम की आपूर्ति और माँग के नियम की यह गति पूँजी की निरंकुशता को पूर्णता तक पहुँचा देती है। इसलिए, जैसे ही मज़दूर इस बात का भेद समझ जाते हैं कि ऐसा क्यों होता है कि जितना ज़्यादा वे काम करते हैं, जितनी अधिक परायी धन-सम्पदा वे पैदा करते हैं, और उनके श्रम की उत्पादकता जितनी बढ़ती जाती है, उतना ही पूँजी के मूल्य संवर्धन के साधन के रूप में उनका प्रकार्य अनिश्चितता में घिरता जाता है; जैसे ही उन्हें पता चलता है स्वयं उनके बीच प्रतिस्पर्द्धा की सघनता का परिमाण पूरी तरह से सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी के दबाव पर निर्भर करता है, जैसे ही वे ट्रेड यूनियन आदि बनाकर रोज़गारशुदा मज़दूरों और बेरोज़गार मज़दूरों के बीच योजनाबद्ध सहकार को संगठित करने का प्रयास करते हैं ताकि उनके वर्ग पर पूँजीवादी उत्पादन के इस नैसर्गिक नियम के विनाशकारी प्रभावों से छुटकारा पा सकें या कम से कम उसे कमज़ोर कर सकें, वैसे ही पूँजी और इसका चाटुकार राजनीतिक अर्थशास्त्र आपूर्ति और माँग के 'शाश्वत', बल्कि कहें 'पवित्र' नियम के उल्लंघन पर चीख़ उठते हैं। रोज़गारशुदा व बेरोज़गार मज़दूरों के बीच मेल की हर कार्रवाई इस नियम की 'शुद्ध' कार्रवाई में विघ्न डाल देती है।"** (वही, पृ. 793-94)

सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी के अस्तित्व के विभिन्न रूप

इसके बाद मार्क्स उन विभिन्न रूपों की चर्चा करते हैं जिसमें औद्योगिक रिज़र्व सेना अस्तित्वमान होती है। मार्क्स की यह चर्चा आज के दौर में बहुत प्रासंगिक है। सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी के एक विशिष्ट रूप की मार्क्स द्वारा की गयी चर्चा आज के दौर में जारी अनौपचारिकीकरण को समझने के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। आज अनौपचारिकीकरण, ठेकाकरण और दिहाड़ीकरण की जो प्रक्रिया धड़ल्ले से चलायी जा रही है, उससे कई लोगों को यह दृष्टि-भ्रम हो जाता है कि अनौपचारिक मज़दूर वर्ग या अनौपचारिक क्षेत्र नवउदारवादी दौर में पैदा हुई कोई चीज़ है। सच यह है कि औपचारिक क्षेत्र अनौपचारिक क्षेत्र से पैदा हुआ था। पूँजीवाद के इतिहास में पहला दौर औपचारिक क्षेत्र और औपचारिक मज़दूर वर्ग का नहीं था। औपचारिक क्षेत्र और औपचारिक मज़दूर वर्ग, मज़दूर वर्ग के संगठित संघर्षों के दशकों का नतीजा थे। इनके आधार पर ही कारखाना अधिनियम, श्रम क़ानून, औद्योगिक विवाद अधिनियम आदि बने। भारत जैसे देशों में तो इन क़ानूनों के द्वारा विनियमन के मातहत बड़ी मज़दूर आबादी कभी आयी ही नहीं। वह हमेशा अनौपचारिक क्षेत्र में ही काम करती रही। आज नवउदारवाद के दौर में औपचारिक क्षेत्र को और भी छोटा किया जा रहा है और स्वयं औपचारिक क्षेत्र के भीतर औपचारिक मज़दूर वर्ग को भी ठेकाकरण, दिहाड़ीकरण व कैजुअलीकरण के ज़रिये ख़त्म किया जा रहा है। वास्तव में, ठेका प्रथा के ज़रिये व्यापक रोज़गारशुदा आबादी को अर्द्ध-रोज़गारशुदा आबादी में तब्दील किया जा रहा है और वहाँ भी काम मिलना बेहद अनिश्चित है। मार्क्स ने सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी के तमाम रूपों के बारे में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जो लिखा आज वह एक अलग सन्दर्भ में बेहद प्रासंगिक बन गया है।

मार्क्स कहते हैं कि सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी मुख्य तौर पर चार रूपों में मौजूद रहती है : *चलायमान (floating), सुप्त (latent), ठहरावग्रस्त (stagnant)* और *दरिद्र (pauper)*।

चलायमान रूप में मौजूद सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी वह होती है जो उन उद्योगों द्वारा एक समय के बाद बाहर निकाल दी जाती है, जिसमें वह शुरू से काम कर रही होती है। इसके बाद, वह इससे निचले दर्ज़े के उद्योगों में या कम कुशलता वाले काम करने लगते हैं। आधुनिक उद्योगों की लगभग सभी शाखाओं में मज़दूरों को बेहद कम उम्र में लगाया जाता है और कमरतोड़ मेहनत के द्वारा उनके शरीर को पूरी तरह से चूस लिया जाता है। इसके बाद, ये उद्योग उन्हें बाहर फेंक देते हैं और नये कम उम्र मज़दूरों को भर्ती करते हैं। एक उम्र के बाद (आम तौर पर, यह उम्र 25 से 35-40 के बीच होती है) इन उद्योगों द्वारा बाहर कर दिये गये मज़दूर इस चलायमान सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी का प्रमुख हिस्सा होते हैं। आप आज इस प्रक्रिया को बड़े पैमाने के ऑटोमोबाइल उद्योग, टेक्सटाइल उद्योग, आदि सभी आधुनिक उद्योगों में देख सकते हैं। ऐसे मज़दूरों में से कुछ प्रवास या आप्रवास कर जाते हैं और कहीं और जाकर किसी और उद्योग में काम की तलाश करते हैं। मार्क्स लिखते हैं:

"...पूँजी द्वारा श्रमशक्ति का उपभोग इतनी तेज़ होता है कि मज़दूर अपनी ज़िन्दगी का आधा हिस्सा पूरा करते-करते कमोबेश अपने आपको पूरी तरह से ख़र्च कर चुका होता है। वह अतिरिक्त आबादी की कतारों में जा गिरता है, या फिर सीढ़ी पर ऊपर से नीचे की ओर धकेल दिया जाता है।

(पेज 14 पर जारी)

पूँजीवादी संचय का आम नियम

(पेज 13 से आगे)

बड़े पैमाने के उद्योगों के मज़दूरों में ही हमें सबसे कम जीवन-प्रत्याशा देखने को मिलती है... इन परिस्थितियों में सर्वहारा के इस हिस्से में निरपेक्ष बढ़ोत्तरी अनिवार्यत: ऐसा रूप लेती है जो उनकी संख्या को बढ़ाती है, हालाँकि इस आबादी के अलग-अलग व्यक्तियों की बात करें तो उनका तेज़ी से क्षय हो जाता है। इसी वजह से मज़दूरों की एक पीढ़ी की जगह बेहद तेज़ी के साथ दूसरी पीढ़ी ले लेती है (यह नियम जनसंख्या के अन्य वर्गों पर लागू नहीं होता है)। इस सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति समय से पहले विवाह से होती है, जो बड़े पैमाने के उद्योगों में काम करने वाले मज़दूरों के जीवन की स्थितियों से पैदा होने वाला अनिवार्य परिणाम है...'' (*वही*, पृ. 795)

सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी का सुप्त हिस्सा वह होता है जो खेती में पूँजीवाद के विकास के साथ खेती के क्षेत्र से अतिरिक्त आबादी के रूप में बाहर कर दिया जाता है। खेती में पूँजीवादी विकास का अर्थ होता है उत्पादक शक्तियों का विकास और उसके साथ श्रमशक्ति की माँग की कमी। उद्योगों के क्षेत्र में जब किसी एक उद्योग में ऐसा होता है, तो कोई दूसरा उद्योग इस आबादी को पूर्ण या आंशिक रूप से समेट सकता है। लेकिन खेती के क्षेत्र के साथ ऐसा नहीं होता है। नतीजतन, खेतिहर आबादी का एक हिस्सा हमेशा मैन्युफैक्चरिंग व अन्य शहरी उद्यमों की ओर जाने की कगार पर खड़ा होता है और इस संक्रमण को पूरा करने के मुफ़ीद मौकों की तलाश में रहता है। इस सुप्त सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी का एक हिस्सा लगातार शहरी उद्योगों में जाता रहता है, लेकिन एक हिस्सा गाँव में ही फँसा रहता है। इसकी वजह से खेतिहर मज़दूरों की औसत मज़दूरी पर भी नीचे गिरने का दबाव बना रहता है।

सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी का तीसरा हिस्सा होता है ठहरावग्रस्त सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी। *इस श्रेणी को समझना आज के समय में पहले से भी ज़्यादा अहम है।* यही वह श्रेणी है जो आज अनौपचारिक क्षेत्र के मज़दूरों को समझने के लिए सबसे महत्वपूर्ण है। इस श्रेणी में बारे में हम सीधे मार्क्स को ही उद्धृत करेंगे। पाठक को यह लग सकता है कि मार्क्स ने यह पंक्तियाँ आज के नवउदारवादी पूँजीवाद के लिए लिखी हैं। मार्क्स कहते हैं:

''सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी की तीसरी श्रेणी है ठहरावग्रस्त आबादी। यह सक्रिय श्रम सेना का अंग होती है, मगर इसका रोज़गार बेहद अनियमित होता है। इसलिए यह पूँजी को सुलभ उपलब्ध श्रमशक्ति का एक अक्षय भण्डार देता है। इसके जीवन की स्थितियाँ मज़दूर वर्ग के औसत सामान्य स्तर से नीचे गिर जाती हैं, और ठीक यही चीज़ है जो इसे पूँजीवादी शोषण की विशेष शाखाओं का एक व्यापक आधार बना देती है। इसकी पहचान अधिकतम काम के समय और न्यूनतम स्तर की मज़दूरी से होती है। 'घरेलू उद्योग' के शीर्षक के तहत हम इसके प्रमुख रूप से पहले ही परिचित हो चुके हैं। इनकी बड़े पैमाने के उद्योगों व खेती से लगातार ही भर्ती होती रहती है, वे जो वहाँ फ़ालतू हो चुके हैं, और विशेष तौर पर उद्योगों की उन क्षयमान शाखाओं से भर्ती होती रहती है जहां दस्ताकरी से मैन्युफैक्चर में और मैन्युफैक्चर से मशीनरी की ओर संक्रमण हो रहा होता है। संचय की सीमाओं और उसकी ऊर्जा के विस्तार के साथ यह आबादी उसी अनुपात में बढ़ती है जिसमें कि अतिरिक्त आबादी की रचना बढ़ती है। लेकिन साथ ही यह मज़दूर वर्ग का एक खुद से पुनरुत्पादन करने वाला और खुद को जारी रखने वाला तत्व होता है, जो उस वर्ग की आम वृद्धि में बड़े-से-बड़ा हिस्सा लेता जाता है। दरअसल, न सिर्फ़ जन्म और मृत्यु की संख्या, बल्कि परिवारों का निरपेक्ष आकार, मज़दूरी के सतर के व्युत्क्रमानुपात में होता है, और इसलिए मज़दूरों की विभिन्न श्रेणियों के लिए सहज उपलब्ध जीविका के साधनों की मात्रा के भी व्युत्क्रमानुपात में होता है। पूँजीवादी समाज का यह नियम जंगली लोगों को, या यहाँ तक कि सभ्य उपनिवेशवादियों को भी, बेतुका लग सकता है। इसे देखकर पशुओं के असीमित पुनरुत्पादन की याद आती है जो अलग-अलग देखें तो बेहद कमज़ोर होते हैं और उनका निरन्तर शिकार होता है।'' (*वही*, पृ. 796-797)

जैसा कि पाठक ख़ुद ही पढ़कर समझ सकते हैं, यह एक प्रकार से आज के अनौपचारिक क्षेत्र व औपचारिक क्षेत्र के अनौपचारिक मज़दूरों का एक विवरण लगता है, जिनके पास पक्का रोज़गार नहीं होता, अक्सर कोई रोज़गार नहीं होता, जो पूँजी द्वारा भयंकर शोषण के लिए उपलब्ध होते हैं, जो सबसे कम मज़दूरी पाते हैं और जो सबसे लम्बे कार्यदिवस का शिकार होते हैं। मार्क्स ने उपरोक्त उद्धरण में यह वैज्ञानिक पूर्वानुमान भी लगाया है कि सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी का यह हिस्सा मज़दूर वर्ग में लगातार बढ़ता जायेगा। यह पूर्वानुमान शब्दश: सही सिद्ध हुआ है।

सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी का आखिरी हिस्सा होता है दरिद्रीकृत लोगों का। अपराधियों, वेश्याओं, घुमन्तू आवारा लोगों को छोड़ दें तो इसके तीन हिस्से होते हैं। पहला, वे जो काम कर सकते हैं। दूसरा हैं अनाथ व दरिद्र बच्चे। जब औद्योगिक तेज़ी का दौर होता है, तो इनमें से कइयों को उद्योग श्रम की सक्रिय सेना में शामिल कर लेता है। तीसरा है वह क्लान्त, भ्रष्ट, अमानवीकृत आबादी व काम करने में अक्षम लोग जो तेज़ी से बदलती औद्योगिक दुनिया में अपने आपको अनुकूलित नहीं कर पाते। तेज़ी से बदलता श्रम विभाजन उन्हें कुछ समय बाद ही काम करने वालों की आबादी से बाहर धकेल देता है। इनमें वे लोग भी शामिल होते हैं जो एक मज़दूर के औसत कार्यजीवन को जी चुके होते हैं और अब बेकार हो चुके होते हैं। इसके अलावा, पूँजीवादी उद्योगों में दुर्घटना या औद्योगिक विपत्ति का शिकार हुए लोग होते हैं, जो इसी श्रेणी में आते हैं। जैसे-जैसे उद्योगों में भारी और ख़तरनाक मशीनरी का विकास होता है, तमाम जोखिम भरे कामों से भरे उद्योगों का विकास होता है, वैसे-वैसे उनमें दुर्घटनाओं और विपत्तियों का शिकार होने वाले मज़दूरों की संख्या भी बढ़ती जाती है, जिन्हें पूँजीवादी उद्योग ने किसी योग्य न छोड़ा होता है। ये सारी आबादी पूँजीवादी समाज में दरिद्रीकृत सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी में शामिल होती है। मार्क्स लिखते हैं:

''दरिद्रीकरण सक्रिय श्रम सेना का अस्पताल और औद्योगिक आरक्षित सेना का मृत भार है। इसका उत्पादन सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी में शामिल होता है, इसकी अनिवार्यता उसी की अनिवार्यता में अन्तर्निहित होती है; अतिरिक्त आबादी के साथ, दरिद्रीकरण पूँजीवादी उत्पादन, और सम्पदा के पूँजीवादी विकास की एक पूर्वशर्त होती है। यह पूँजीवादी उत्पादन के आकस्मिक व्यय का हिस्सा है : लेकिन आम तौर पर पूँजी को यह पता होता है कि वह इसका बोझ अपने कन्धों से मज़दूर वर्ग और टुटपुँजिया वर्ग के कन्धों पर कैसे डाले।'' (*वही*, पृ. 797)

अन्त में, मार्क्स बताते हैं कि यह पूँजीवादी संचय का आम नियम है कि समाज में एक छोर पर समृद्धि इकट्ठा होती जाती है और दूसरी ओर ग़रीबी, अभाव और दुख इकट्ठा होता जाता है। पूँजी संचय जितना तेज़ी से आगे बढ़ता है, सम्पदा का पूँजीवादी सृजन जितने बड़े पैमाने पर होता है, सर्वहारा वर्ग की संख्या भी उतनी ज़्यादा बढ़ती है और साथ ही श्रम की उत्पादकता भी उसी अनुपात में छलाँगें मारते हुए बढ़ती है; नतीजतन, बेरोज़गारों की विशाल सेना का निर्माण भी उसी त्वरित गति से होता रहता है। जो कारक पूँजीवादी समृद्धि को द्रुत गति से विकसित करते हैं, ठीक वही कारक पूँजी की सेवा में श्रमशक्ति के विशाल रिज़र्व भण्डार को भी विकसित करते हैं। जिस गति से धनी वर्गों के हाथों धन-सम्पदा का विकास होता है, उसी ऊर्जा से औद्योगिक रिज़र्व सेना भी बढ़ती जाती है। लेकिन श्रम की सक्रिय सेना के सापेक्ष श्रम की आरक्षित सेना जितनी ज़्यादा बढ़ती है, उतना ही श्रम की आरक्षित सेना का वह हिस्सा बढ़ता जाता है, जो इसी हालत में स्थायी स्वरूप ग्रहण कर लेता है, यानी जो आम तौर पर रोज़गारशुदा मज़दूरों की तादाद में कभी शामिल हो ही नहीं पाता। इस आबादी का *''कष्ट उस यातना की मात्रा से व्युत्क्रमानुपात में होता है जो उसे श्रम करने के रूप में झेलनी पड़ती है''* (*वही*, पृ. 798)। यानी, औद्योगिक रिज़र्व सेना और समूचे मज़दूर वर्ग का वह हिस्सा जो दरिद्रीकरण में धकेल दिया जाता है, वह बढ़ते पूँजी संचय और उसके साथ ही श्रम की सक्रिय सेना के सापेक्ष श्रम की आरक्षित सेना में होने वाली वृद्धि के साथ बढ़ता जाता है। मार्क्स कहते हैं कि यह *''पूँजीवादी संचय का निरपेक्ष सामान्य नियम है।''*

(अगले अंक में अध्याय-17 – "तथाकथित आदिम संचय")

अक्टूबर क्रान्ति के नेता वी.आई. लेनिन के तीन विचारणीय उद्धरण

"आधुनिक राज्यों के बुनियादी क़ानूनों को लीजिए, उनके प्रशासन को लीजिए, सभा करने की आज़ादी को लीजिए, प्रेस की आज़ादी को लीजिए, या फिर "क़ानून के सामने सभी नागरिकों की समानता" को ले लीजिए, और आप हर मोड़ पर पूँजीवादी लोकतंत्र के उस पाखण्ड के साक्ष्य देखेंगे जिससे हर ईमानदार और वर्ग-सचेत मज़दूर परिचित होता है। एक भी ऐसा राज्य नहीं है, चाहे जितना भी लोकतांत्रिक क्यों न हो, जिसके संविधान में ऐसे छेद या प्रावधान न हों जो कि बुर्जुआ वर्ग को मज़दूरों के ख़िलाफ़ सेना भेजने, मार्शल लॉ लागू करने या ऐसी ही अन्य सम्भावनाओं की गारण्टी न देता हो – कहने को "सार्वजनिक व्यवस्था के उल्लंघन" की स्थिति में, और वास्तव में ऐसी स्थिति में जब शोषित वर्ग ग़ुलामी की अपनी हालत का "उल्लंघन" करता है और ग़ुलामों के ढंग से हटकर आचरण करने की कोशिश करता है।"

('सर्वहारा क्रान्ति और ग़द्दार काउत्स्की' से)

"लोग राजनीति में हमेशा से धोखाधड़ी और ख़ुद को धोखे में रखने के नादान शिकार हुए हैं और तब तक होते रहेंगे जब तक वे तमाम नैतिक, धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक कथनों, घोषणाओं और वायदों के पीछे किसी न किसी वर्ग के हितों का पता लगाना नहीं सीखेंगे। सुधारों और बेहतरी के समर्थक जब तक यह नहीं समझ लेंगे कि हर पुरानी संस्था, चाहे वह कितनी भी बर्बरतापूर्ण और सड़ी हुई क्यों न प्रतीत होती हो, किन्हीं शासक वर्गों के बल-बूते पर ही क़ायम रहती है, तब तक पुरानी व्यवस्था के संरक्षक उन्हें बेवकूफ़ बनाते रहेंगे। और इन वर्गों के प्रतिरोध को चकनाचूर करने का केवल एक तरीक़ा है और वह यह है कि जिस समाज में हम रह रहे हैं, उसी में उन शक्तियों का पता लगायें और उन्हें संघर्ष के लिए जागृत तथा संगठित करें, जो पुरातन को विनष्ट कर नूतन का सृजन करने में समर्थ हो सकती हैं और जिन्हें अपनी सामाजिक स्थिति के कारण ऐसा करने में समर्थ होना चाहिए।"

('मार्क्सवाद के तीन स्रोत और तीन संघटक अंग' से)

"बुर्जुआ वर्ग के शासन को उलटने का काम उस ख़ास वर्ग की हैसियत से केवल सर्वहारा वर्ग ही कर सकता है, जिसके जीवन की आर्थिक परिस्थितियाँ उसे इस काम के लिए प्रशिक्षित करती हैं, क्षमता और शक्ति देती हैं। बुर्जुआ वर्ग जहाँ किसानों और सभी टुटपूँजिया तबकों को विखण्डित और विभाजित करता है, वहीं वह सर्वहारा वर्ग को जमा करता है, एकताबद्ध और संगठित करता है। केवल सर्वहारा वर्ग ही – बड़े पैमाने के उत्पादन में अपनी आर्थिक भूमिका के कारण – उस तमाम श्रमजीवी और शोषित जनता का नेतृत्व कर सकता है, जिसका शोषण, उत्पीड़न और दमन बुर्जुआ वर्ग सर्वहारा की अपेक्षा कम नहीं, बल्कि अकसर ज़्यादा करता है, लेकिन जो अपनी स्वाधीनता के लिए स्वतंत्र रूप से संघर्ष चलाने में असमर्थ होती है।"

('राज्य और क्रान्ति' से)

ग़रीबों में सन्तोष का नुस्खा

• लू शुन (महान चीनी लेखक)

कोई शिक्षक अपने बच्चों को नहीं पढ़ाता, उसके बच्चों को दूसरे ही पढ़ाते हैं। कोई डाक्टर अपना इलाज खुद नहीं करता, उसका इलाज कोई दूसरा ही डाक्टर करता है। लेकिन अपना जीवन जीने का तरीक़ा हर आदमी को ख़ुद खोजना पड़ता है, क्योंकि जीने की कला के जो भी नुस्खे दूसरे लोग बनाते हैं वे बार-बार बेकार साबित होते हैं।

दुनिया में प्राचीन काल से ही शान्ति और चैन बनाये रखने के लिए ग़रीबी में सन्तोष पाने का उपदेश बड़े पैमाने पर दिया जाता है। ग़रीबों को बार-बार बताया जाता है कि सन्तोष ही धन है। ग़रीबी में सन्तोष पाने के अनेक नुस्खे तैयार किये गये हैं लेकिन उनमें से कोई पूरी तरह सफल नहीं हुआ है। अब भी रोज़-रोज़ नये-नये नुस्खे बनाये जा रहे हैं। मैंने अभी हाल में ऐसे दो नुस्खों को देखा है। वैसे ये दोनों भी बेकार ही हैं।

इनमें से एक नुस्खा यह है कि लोगों को अपने कामों में दिलचस्पी लेनी चाहिए। 'अगर आप अपने काम में दिलचस्पी लेना शुरू कर दें तो काम चाहे कितना ही मुश्किल क्यों न हो, आप ख़ुशी से काम करेंगे और कभी नहीं थकेंगे।' अगर काम बहुत मुश्किल न हो तो यह बात सच हो सकती है। चलिए, हम खदान मज़दूरों और मेहतरों की बात नहीं करते। आइए, हम शंघाई के कारखानों में दिन में दस घण्टे से अधिक काम करने वाले मज़दूरों के बारे में बात करें। वे मज़दूर शाम तक थक कर चूर-चूर हो जाते हैं, और शाम को ही कारख़ानों में अधिक दुर्घटनाएँ होती हैं। बार-बार यह उपदेश दिया जाता है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन होता है। अगर आपको अपने शरीर की देखभाल की फ़ुरसत नहीं मिलती तो आप काम में दिलचस्पी कहाँ से पैदा करेंगे। इस हालत में वही आदमी काम में दिलचस्पी ले सकता है जो जीवन से अधिक दिलचस्पी में दिलचस्पी रखता हो। अगर आप शंघाई के मज़दूरों से बात करें तो वे काम के घण्टे कम करने की ही बात करेंगे। वे काम में दिलचस्पी पैदा करने की बात कल्पना में भी नहीं सोच सकते।

इससे भी अधिक पक्का नुस्खा एक दूसरा है। कुछ लोग अमीरों और ग़रीबों की तुलना करते हुए कहते हैं कि आग बरसाने वाले गर्मी के दिनों में अमीर लोग अपनी पीठ पर बहते पसीने की धार की चिन्ता न करते हुए सामाजिक सेवा में लगे रहते हैं। ग़रीबों का क्या है? वे एक टूटी चटाई गली में बिछा देते हैं, फिर अपने कपड़े उतारते हैं और चटाई पर बैठकर आराम से ठण्डी हवा खाते हैं। यह कितना सुखद है। इसी को कहते हैं चटाई समेटने की तरह दुनिया को जीतना। यह सब दुर्लभ और राज्यात्मक नुस्खा है लेकिन इसके बाद एक दुखद दृश्य सामने आता है। अगर आप शरद ऋतु में गलियों से गुज़र रहे हों तो देखेंगे कि कुछ लोग अपने पेट कसकर पकड़े हुए हैं और कुछ नीले तरल पदार्थ की उल्टी कर रहे हैं। ये उल्टी करने वाले वे ही ग़रीब लोग हैं जो जिनके बारे में कहा जाता है कि वे धरती पर स्वर्ग का सुख लूटते हैं और चटाई समेटने की तरह दुनिया को जीतते हैं। मेरा ख्याल है कि शायद ही कोई ऐसा बेवकूफ होगा जो सुख का मौक़ा देखकर भी उससे लाभ न उठाता हो। अगर ग़रीबी इतनी सुखद होती तो ये अमीर लोग सबसे पहले गली में जाकर सो जाते और ग़रीबों की चटाई के लिए कोई जगह न छोड़ते।

अभी हाल में ही शंघाई के हाई स्कूल की परीक्षा के छात्रों के निबन्ध छपे हैं। उनमें एक निबन्ध का शीर्षक है 'ठण्ड से बचाने लायक कपड़े और भरपेट भोजन'। इस लेख में कहा गया है कि "एक ग़रीब व्यक्ति भी कम खाकर और कम पहनकर अगर मानवीय गुणों का विकास करता है तो भविष्य में उसे यश मिलेगा। जिसका आध्यात्मिक जीवन समृद्ध है उसे अपने भौतिक जीवन की ग़रीबी की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। मानव जीवन की सार्थकता पहले में है, दूसरे में नहीं।"

इस लेख में केवल भोजन की ज़रूरत को ही नहीं नकारा गया है, कुछ आगे की बातें भी कही गयी हैं। लेकिन हाई स्कूल के छात्र के इस सुन्दर नुस्खे से विश्वविद्यालय के वे छात्र सन्तुष्ट नहीं हैं जो नौकरी खोज रहे हैं।

तथ्य बहुत निर्मम होते हैं। वे खोखली बातों के परखचे उड़ा देते हैं। मेरे विचार से अब वह समय आ गया है कि ऐसी पण्डिताऊ बकवास को बन्द कर दिया जाये। अब किसी भी हालत में इसका कोई उपयोग नहीं है।

यंत्रणागृह

• अर्न्स्ट टोलर (हिटलर के दौर के जर्मन लेखक)

स्टुटगार्ट के खुफ़िया पुलिस के अफ़सर ने उस मरते हुए नौजवान से पूछा – क्या तुम्हारी कोई आख़िरी इच्छा है जिसे इस आख़िरी वक़्त पूरा करना चाहो?

नौजवान सूनी आँखों से उन बन्द खिड़कियों को एकटक देखता रहा जो आसमान को नीले चौकोर टुकड़ों में काट देती थीं। आँगन में शाहबलूत का पेड़ अपने कँटीले फलों से लदा खड़ा था। उसने अपने से कहा – देखो वहाँ कैसे मीठे शाहबलूत के फल लगे हैं, वे तुम्हारे खाने के लिए हैं; और जब वे पक जाते हैं तो मुँह में अपनेआप आ गिरते हैं। मैं उन्हें भरपेट खा सकता था – मैंने अपने को क्यों पकड़ा जाने दिया?

'कुछ समझे मैं तुमसे क्या कह रहा हूँ?' अफ़सर ने दोहराया, 'क्या तुम्हारी कोई अन्तिम इच्छा है?'

नौजवान ने अपने से कहा – हाँ, एक चीज़ है जो मैं चाहता था, या दूसरी तरह कहो तो नहीं चाहता था। मैं नहीं चाहता था कि फिर से क़ैद हो जाऊँ, मैं नहीं चाहता था कि तुम मुझे मारो, ठोकरें बरसाओ और मेरे मुँह पर थूको। अगर मेरे पास ऐसी कोई इच्छा होती तो क्या मैं खिड़की से कूद गया होता? मैं समझता हूँ कि तुम्हारा यह ख़याल है कि मैंने यह सब महज़ मज़ाक के लिए किया है। है न?

'शायद तुम अपनी माँ को देखना चाहो, मौत के पहले?'

मौत, हाँ, यही तो कहते हैं उस काली चीज़ को। लेकिन वह अगर उसका नाम न लेता तो क्या कुछ बिगड़ जाता? मुझे अब यह बताने की ज़रूरत नहीं कि मुझे मरना है: और उस चीज़ का नाम मेरे मुँह पर लेना बहुत बेहूदा बात है।...मगर वह मरेगा नहीं, वह तो घर जायेगा।

'हाँ मैं अपनी माँ को देखना चाहूँगा।' कितना अच्छा आदमी है कि उसे इस बात का ख़याल है; उसकी नीयत यही है शायद...

उसने भावशून्य आँखों से अफ़सर को देखा और सिर हिलाकर अपनी मौन स्वीकृति दी।

'मैंने उन्हें बुलाने के लिए आदमी दौड़ा दिया है, थोड़ी देर में आ जायेंगी वह।...अरे हाँ, एक सवाल है जिसका अब तक हमें कोई जवाब नहीं मिला : वह कौन था जिसने तुम्हें वे पत्र दिये थे?'

अफ़सर ने इन्तज़ार किया।

बहुत ख़ूब, नौजवान ने सोचा। उस सवाल से उसके मुँह का स्वाद न जाने कैसा हो गया। उसे भयानक ऊब और खीझ महसूस हुई।

एक बार उन्होंने उसके मुँह में इसलिए कपड़ा ठूँस दिया था कि वह चिल्ला न सके और आज वे चाहते हैं कि वह चिल्लाए और अपने उन साथियों का नाम उगल दे जिनके पीछे वे हफ़्तों से कुत्तों की तरह लगे थे। कितनी घिनौनी बात है। कितनी घिनौनी।

'मैं आपको कुछ नहीं बता सकता।'

'अपनी माँ का ख़याल करो।'

नौजवान ने छत की ओर देखा।

वह और चार घण्टे ज़िन्दा रहा। चार घण्टे में तो बहुत से सवाल किये जा सकते हैं। अगर तीन मिनट में एक पूछा जाये तो भी हुए अस्सी। अफ़सर अफ़सरी में कुशल था, अपना काम समझता था, इसके पहले वह बहुतों से सवाल कर चुका था। मरते हुए लोगों से भी। तुम्हें जानना चाहिए काम करने का ढंग, और बस। किसी से गला फाड़कर चिल्लाओ और किसी से धीमे, कान में बात करो, कुछ को सब्ज़बाग़ दिखाओ।

अफ़सर ने कहा – 'यह तुम्हारे भले के लिए है।'

लेकिन नौजवान ने फिर कोई सवाल न सुना। न धीमे, न ज़ोर से। वह शान्ति के साथ इस दुनिया से विदा ले चुका था।

दूसरे दिन अखबार में यह विज्ञप्ति छपी :

'जैसे ही खुफ़िया पुलिस के अफ़सर स्टुटगार्ट के एक मज़दूर को इस अभियोग में पकड़ने वाले थे कि वह मज़दूरों को भड़काने वाले पर्चे बाँटता था, वैसे ही वह अपने मकान की तीसरी मंज़िल की खिड़की से नीचे आ गिरा। उसे आँगन में पड़ा पाया गया। उसकी रीढ़ की हड्डी चूर-चूर हो गयी थी।

'कुछ दिन बाद वह जनरल अस्पताल की हवालाती कोठरी में मर गया।'

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

एनटीए में पेपर लीक के लिए मोदी सरकार, प्रशासन और शिक्षा माफ़िया का नापाक गठजोड़ ज़िम्मेदार है

● अदिति

फ़ासीवादी मोदी सरकार का शासनकाल आम मेहनतकश आबादी के साथ आम जनता के बीच से आने वाले छात्रों-युवाओं के लिए किसी भयानक दु:स्वप्न से कम नहीं रहा है। लोगों की ज़िन्दगी को तहस-नहस करने वाली सरकार अब एनटीए के ज़रिये छात्रों नौजवानों के भविष्य से भी खिलवाड़ कर रही है। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, हरियाणा, तेलंगाना सहित देश के हर राज्य में अन्धाधुन्ध पेपर लीक हो रहे हैं और धाँधली हो रही है।

एनटीए को अगर "नो ट्रस्ट एजेंसी" कहा जाये तो कोई भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। क्योंकि नीट-यूजी, यूजीसी-नेट और नीट-पीजी इम्तिहानों का आयोजन करने वाली नेशनल टेस्टिंग एजेंसी (एनटीए) के द्वारा 25 से कम स्थायी कर्मचारियों के साथ 25 परीक्षाएँ आयोजित करवा दी गयी। एनटीए में बड़ी धाँधली की कई ख़बर सामने आयी है। एनटीए द्वारा आयोजित यूजीसी, नेट, नीट यू.जी व पी.जी, सीएसआईआर नेट में बड़ी गड़बड़ियाँ हुई हैं। इस बार आयोजित हुए नीट (UG) की परीक्षा में 67 छात्रों ने टॉप किया। यानी उन्हें 720 में से 720 नम्बर आये। यूजीसी नेट की परीक्षा हो जाने के फ़ौरन बाद उसका पेपर रद्द हो गया। इतना ही नहीं इसके बाद सीएसआईआर नेट और नीट (पीजी) की भी परीक्षाओं की तारीख़ बढ़ा दी गयी। आज कोई भी अख़बार, टीवी चैनल या सोशल मीडिया इस ख़बर से अछूता नहीं रह गया है।

जहाँ एक ओर जनदबाव की वजह से भाजपा के नाम का भोंपू बजाने वाली गोदी मीडिया भी एक हद तक इस धाँधली की आंशिक सच्चाई दिखाने को मज़बूर हो गयी है, वहीं दूसरी ओर आम छात्र आबादी के बीच इस बात को लेकर ज़बरदस्त आक्रोश है। कई जगहों पर तो छात्रों ने इसके ख़िलाफ़ अपना विरोध भी दर्ज़ कराया है, लेकिन इस फ़ासीवादी हुकूमत ने एनटीए के ख़िलाफ़ उठने वाले हर तरह के प्रतिरोध को पुलिस के डण्डों के तले दबाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है।

एनटीए: "नो ट्रस्ट एजेंसी" की धाँधली का इतिहास

ग़ौरतलब है कि 2018 में एनटीए के आधिकारिक रूप से कार्यरत होने के तुरन्त बाद से ही परीक्षाओं पर सन्देह उठने शुरू हो गये थे। वर्ष 2020 में नीट (UG) की परीक्षा के नतीजे में मध्य प्रदेश की एक छात्रा विधि सूर्यवंशी के केवल 6 अंक आये, जिसके बाद वह खुदकुशी करने पर मजबूर हो गयी। बाद में इसपर जब सवाल उठने शुरू हुए तो यह पता चला कि उसने 590 अंक हासिल किये थे। उसी साल मृदुल रावत नाम के एक छात्र को नीट (UG) की परीक्षा में 320 अंक आये, लेकिन इसपर सवाल खड़ा करने पर यह पता चला कि उसने अनुसूचित जनजाति श्रेणी में पूरे भारत में टॉप किया था। बाद में एनटीए ने अपने ग़लती मानने के बजाय उल्टा इस पूरे मसले पर ही लीपापोती करने की कोशिश की। वर्ष 2022 में जेईई (मेन) के जनवरी व अप्रैल दोनों महीनों की परीक्षाओं में तकनीकी ख़राबी की वजह से परीक्षाएँ काफ़ी देरी से शुरू हुईं। इतना ही नहीं कई छात्रों की उत्तरपुस्तिकाओं में भी काफ़ी गड़बड़ी देखने को मिली थी। उसके बाद अब नीट, नेट, सीएसआईआर व अन्य परीक्षाओं में इतने बड़े पैमाने पर हुई धाँधली के बाद एनटीए की विश्वसनीयता पर सवाल खड़ा करना लाज़िमी है।

ऐसा नहीं है कि इससे पहले परीक्षाओं में धाँधली नहीं हुई थी। इससे पहले तमाम प्रतियोगी परीक्षाओं में पर्चा लीक समेत परीक्षाओं के रद्द होने की कई ख़बरें आ चुकी हैं। लेकिन यूजीसी नेट, नीट जैसी परीक्षाओं का पेपर लीक या इसमें इस स्तर पर तकनीकी गड़बड़ी पहले कभी नहीं हुई थी। बाक़ी परीक्षाओं की धाँधली को रोकने के बजाय मोदी सरकार के कार्यकाल में उन परीक्षाओं में भी गड़बड़ी शुरू हो गयी, जिनमें गड़बड़ी की ख़बरें पहले कभी नहीं आयी थीं।

एक अनुमान के मुताबिक़ पिछले सात सालों में पर्चा लीक और परीक्षाओं में धाँधली की वजह से 1 करोड़ 80 लाख से ज़्यादा छात्र प्रभावित हुए हैं और कई छात्र अवसाद और निराशा में आत्महत्या तक के क़दम उठा रहे हैं। इतने बड़े पैमाने पर हो रही धाँधली के बाद अब तक मोदी सरकार और इसकी तमाम एजेंसियों ने जाँच के नाम पर केवल लीपापोती ही की है। हर बार ऐसी घटनाओं के बाद बयानबाज़ी और लफ्फाज़ी का दौर शुरू होता है। कुछ छोटे-मोटे कर्मचारियों, कुछ छात्रों को इसका ज़िम्मेदार ठहराकर पूरे मामले को ठिकाने लगा दिया जाता है और बहुत सफ़ाई के साथ असली अपराधियों को बचा लिया जाता है। यही वजह है कि मोदी सरकार के शासनकाल में अब तक इस मामले में न तो कोई बड़ी गिरफ़्तारी हुई है और न ही कोई कार्रवाई हुई है।

आज लगातार हो रहे पेपर लीक व परीक्षाओं के रद्द होने की वजह से आम छात्र आबादी अवसाद के अन्धेरे में जी रही है। आप खुद सोचिए, नीट और नेट जैसी परीक्षाओं में बेहतर अंक लाने के लिए ये छात्र कितना समय, ऊर्जा और पैसे खर्च करते हैं, और परीक्षा के बाद इसके रद्द होने की ख़बर आती है। ऐसे में आम छात्र क्या अवसाद का शिकार नहीं होंगे? क्या इसकी वजह से जिन छात्रों ने आत्महत्याएँ की या फिर जो अवसादग्रस्त हो गये, उसके लिए क्या यह सरकार ज़िम्मेदार नहीं है? इस सरकार की लापरवाही और अनदेखी ने आज देश में कई नौजावनों की जानें ले ली है। आँकड़े बताते हैं कि देश में पिछले दो दशकों में आत्महत्या की दर 7.9 प्रति लाख से बढ़कर 12.14 प्रति लाख हो गयी है। देश में कुल आत्महत्या करने वालों में से 40.77 फ़ीसदी 30 साल से कम उम्र के हैं। 2022 में हर घण्टे तीन स्वरोज़गारशुदा नौजवान, दो बेरोज़गार और हर 2 घण्टे में तीन छात्रों ने आत्महत्या की। ये आँकड़े उन घटनाओं के आधार पर हैं जो मीडिया में ख़बर बनीं। इससे कई गुना ज़्यादा घटनाएँ ऐसी हैं जो मीडिया तक पहुँच ही नहीं पाती हैं।

विश्वविद्यालय नहीं "शॉपिंग मॉल" में बिकती शिक्षा

पिछले साल दिल्ली विश्वविद्यालय ने सलाना फ़ीस में 46% कई बढ़ोतरी की थी। डीयू में बी. टेक कार्यक्रम की फीस 5000 रुपये से लेकर 14,000 रुपये तक है। बीएससी की फीस 8000 रुपये से लेकर 50,000 रुपये तक है। दिल्ली विश्वविद्यालय एलएलएम की फीस लगभग 13,730 रुपये है।

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय (रोहतक) ने बीकॉम और बीएससी की फीस 8592 से 40,660 रुपये व बीए कोर्स की फीस 8522 रुपये से 30,660 रुपये कर दी है। यह फीस वृद्धि के नाम पर विद्यार्थियों से खुली लूट है। यह एक तरह से विश्वविद्यालय के दरवाजे आम परिवारों के बच्चों के लिए बन्द करने का फ़रमान है। यह फीस वृद्धि निसन्देह ग़रीब और मध्यम वर्ग के छात्रों के शिक्षा के अधिकार छीन रही है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को लागू कर स्नातक को तीन साल से बढ़ाकर चार साल कर दिया गया है।

2022 वर्ष में जामिया मिलिया इस्लामिया द्वारा पेश किये जाने वाले बीए, बीए हिस्ट्री ऑनर्स, बीए इंग्लिश ऑनर्स सहित अधिकांश अण्डरग्रेजुएट कोर्सेज की फीस 20,000 रुपये से 22,000 रुपये तक है जबकि बीए भूगोल ऑनर्स 23,400 रुपये है। बीटेक और बीए एलएलबी कोर्सेज 50000 रुपये से 2 लाख रुपये तक कर दी गयी है।

कुल मिलाकर बात की जाये तो आम -मेहनतकश आबादी और निम्न-मध्यम वर्ग की पहुँच से शिक्षा को दूर किया जा रहा है। विश्वविद्यालय और कॉलेजों को सरकार ने शॉपिंग मॉल तब्दील कर दिया है, जिसके कारण शिक्षा पर एक खास घराने का कब्ज़ा होता जा रहा है। परीक्षाओं में भी जो घपले किये जा रहे हैं, उसका एक लक्ष्य सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली को तबाह कर निजी विश्वविद्यालयों को फ़ायदा पहुँचाना है।

हर परीक्षा में भ्रष्टाचार, कौन है इसका ज़िम्मेदार?

भविष्य की अनिश्चितता के कारण छात्र-युवा और अभिभावक हर क़ीमत पर अपने भविष्य को सुरक्षित कर लेना चाहते हैं। इसी बढ़ती असुरक्षा का फ़ायदा शिक्षा माफ़िया उठाते हैं और शासन में अपनी पकड़ का इस्तेमाल कर छात्रों के भविष्य का सौदा कर करोड़ों रुपये बना रहे हैं। पर्चा लीक या धाँधली आम छात्रों के बस की बात नहीं है। सच्चाई यह है कि बिना नेताओं, अधिकारियों, शिक्षा माफ़ियाओं की मिलीभगत के इस तरह का कोई भ्रष्टाचार तन्त्र पनप ही नहीं सकता। एनटीए देशभर में तमाम प्रतियोगी परीक्षाओं को आयोजित कराने वाली संस्था है। एनटीए द्वारा परीक्षा कराने के लिए पेपर छापने से लेकर परीक्षा के सेण्टर तक कई निजी कम्पनियों को ठेका दिया जाता है। अक्सर ये कम्पनियाँ शिक्षा माफ़ियाओं, नौकरशाहों और नेताओं की शह पर ही पेपर लीक करने का काम करती हैं। अब इसके कई प्रमाण भी हमारे सामने हैं। 2017 में हुए सीबीएसई पेपर लीक में कोचिंग संचालक और एबीवीपी के संयोजक सहित 15 लोग शामिल थे। व्यापम घोटाले का सच शायद ही किसी से छुपा होगा जब मध्य प्रदेश में तत्कालीन भाजपा की सरकार और शिवराज सिंह चौहान के शासनकाल में सभी गवाह सन्देहपूर्ण परिस्थितिओं में मारे गये। यह बात अब दिन के उजाले की तरह साफ़ है कि परीक्षाओं में धाँधली सरकार की मिलीभगत के बिना सम्भव नहीं है। और इस मामले में भाजपाइयों की केन्द्रीय सरकार और उनकी राज्य सरकारों से ज़्यादा भ्रष्टाचारी सरकारें भारत के इतिहास में नहीं आयी हैं।

पिछले 10 सालों में भाजपा द्वारा तमाम शैक्षणिक संस्थानों के भीतर घुसपैठ से हम सब भली-भाँति वाक़िफ़ हैं। साथ ही हमें यह भी पता है कि फ़ासीवादी विचारधारा के आधार पर हुई तत्कालीन भर्तियों में कितने "योग्य" लोग ऊँचे पदों पर बैठे हैं! इसका ही नतीजा है कि आज तमाम शैक्षणिक और गैर-शैक्षणिक संस्थानों में फ़ासीवादी हस्तक्षेप के बाद वे फिसड्डी साबित हुए हैं। तो अब सवाल यही उठता है कि क्या हम इस फ़ासीवादी निज़ाम को अपने भविष्य के साथ खेलने देंगे? क्या हम यह मानकर बैठ जायेंगे कि इसकी वजह से जिन छात्रों की जानें गयी, उसमें सरकार को कोई ज़िम्मेदारी नहीं थी? क्या हज़ारों छात्रों को अवसाद के अन्धेरे में जाता देख हमारा खून नहीं खौलता?

आम घरों के बच्चे डॉक्टर, इन्जीनियर बनने का सपना तक नहीं देख सकते। पेपर पैटर्न से लेकर भारी फ़ीस के बोझ के कारण शिक्षण संस्थानों तक आम मेहनतकश जनता को दूर कर दिया जाता है और मानसिक और शारीरिक श्रम के बीच एक अभेदीय दीवार खड़ी दी जाती है। जो मज़दूर अपनी हाड़-तोड़ मेहनत के दम पर विश्वविद्यालय, कॉलेज तमाम चीजें खड़ी करता है, वह ताउम्र उससे वंचित रहता है। सीधी-सी बात है सरकारी शिक्षण संस्थानों में लगातार घटती सीटों और बढ़ती फीसों से शिक्षा सिर्फ़ एक वर्ग तक सीमित कर दिया है। वैसे तो अनुच्छेद 21 के अनुसार सबको जीने का अधिकार है लेकिन एक बात समझने की है कि जब आपके पास शिक्षा और रोज़गार का अधिकार ही ना हो तो जीने का क्या मतलब! आज भी युवा लाइब्रेरी में दिन रात परीक्षाओं की तैयारी कर अपनी ज़िन्दगी खपा रहे हैं, लेकिन पेपर अक्सर लीक करा दिये जाते है जिसके कारण अवसाद में आकर आत्महत्या जैसी घटनाएँ बहुत तेज़ी से बढ़ रही है। मध्यवर्ग के विवेकवान लोगों को भी समझना होगा कि फ़ासीवादी मोदी सरकार और उसके द्वारा धड़ल्ले से लागू की गयी पूँजीवादी नीतियों का निशाना अब वह भी बन रहा है, उसके बच्चे भी बन रहे हैं। पूँजीपरस्त नीतियों और फ़ासीवादियों के नंगे भ्रष्टाचार का यह नतीजा तो होना ही था। कम-से-कम अब उन्हें समझ जाना चाहिए कि दुश्मन कोई बाबर-अकबर या कोई विशिष्ट अल्पसंख्यक समुदाय नहीं बल्कि देश के पूँजीपति, भूस्वामी, दलाल, बड़े व्यापारी, कुलक-फार्मर व उनकी नुमाइन्दगी करने वाली फ़ासीवादी मोदी सरकार व अन्य पूँजीवादी दलों की सरकारें हैं।

शिक्षा और रोज़गार के हक़ के लिए मज़दूर वर्ग, ग़रीब किसान वर्ग, निम्न-मध्यवर्ग व मध्यम मध्यवर्ग को एकजुट होना होगा। इस सवाल पर एक व्यापक जुझारू जनान्दोलन खड़ा करना तात्कालिक लक्ष्य बनता है।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016